चतुःसहस्र दिव्य प्रबन्ध माला

आऴ्वार वैभव

भाग 1

भुवन वाणी
पत्रिका में
समीक्षार्थ -
पा. वेंकटाचारी

पा. वेंकटाचारी

प्रकाशक

श्री सेवा भारती

मद्रास

प्रकाशन सं. 2/1000

मार्च, 1986

मूल्य : रु. 10/-

लेखक एवं

प्रकाशक :

पा वेंकटाचारी

श्री सेवा भारती,

मद्रास - 600 017

श्रीमते वेदान्त रामानुज महादेशिकाय नमः

श्रीरङ्गम् श्रीमदाण्डवन् आश्रम

परम पूज्य आचार्यवर

श्रीरंङ्गम् श्रीमदाण्डवन् का श्रीमुख

भगवद्भागवत भक्ति भारतीय संस्कृति की जड है। इस पर हमारा गर्व है।

पतित पावनी भगवती भागीरथी भारत के भव्य हिमकिरीट से निकली। हरिद्वार से होती हुई बही। आज तक सबको निष्पाप करती रहती है और सर्वदा रहेगी।

इसी प्रकार भगवद् भक्ति और भागवत भक्ति की स्रोतों बहा, भक्तसूरि (आळ्वार) रूपी बारहों शिखरों से निकली एवं भाष्यकार श्री रामानुजाचार्य रूपी हरिद्वार से होती हुई दक्षिण से बही और वक्ता व श्रोताओं को आप्लवित करती आई है।

संत आळ्वार अपनी भावना के प्रकर्ष से श्रीयःपति को तात, मात, गुरु, सखा, प्रियतम, यहाँ तक कि बालक मान बैठे। उनकी सुधाधोरणी वाणी उनकी भव्य भावनाओं का सुमधुर उद्गार हैं जिसका स्वाद लोकोत्तर है। पर भाषा के विषम व्यवधान ने उन दिव्य सूक्तियों को प्रत्येक भारतीय तक पहुँचने नहीं दिया! अब हमारी सर्वोत्तम संस्कृति का पुनरुत्थान अतीव आवश्यक है। वह भक्ति-भावना किसी माध्यम से

प्रकाशन सं. 2/1000

मार्च, 1986

मूल्य : रु. 10/-

लेखक एवं

प्रकाशक :

पा वेंकटाचारी

श्री सेवा भारती,

मद्रास - 600 017

श्रीमते वेदान्त रामानुज महादेशिकाय नमः

श्रीरङ्गम् श्रीमदाण्डवन् आश्रम

परम पूज्य आचार्यवर

श्रीरंङ्गम् श्रीमदाण्डवन् का श्रीमुख

भगवद्भागवत भक्ति भारतीय संस्कृति की जड है। इस पर हमारा गर्व है।

पतित पावनी भगवती भागीरथी भारत के भव्य हिमकिरीट से निकली। हरिद्वार से होती हुई बही। आज तक सबको निष्पाप करती रहती है और सर्वदा रहेगी।

इसी प्रकार भगवद् भक्ति और भागवत भक्ति की स्रोतों बहा, भक्तसूरि (आळ्वार) रूपी बारहों शिखरों से निकली एवं भाष्यकार श्री रामानुजाचार्य रूपी हरिद्वार से होती हुई दक्षिण से बही और वक्ता व श्रोताओं को आप्लवित करती आई है।

संत आळ्वार अपनी भावना के प्रकर्ष से श्रीय:पति को तात, मात, गुरु, सखा, प्रियतम, यहाँ तक कि बालक मान बैठे। उनकी सुधाधोरणी वाणी उनकी भव्य भावनाओं का सुमधुर उद्गार हैं जिसका स्वाद लोकोत्तर है। पर भाषा के विषम व्यवधान ने उन दिव्य सूक्तियों को प्रत्येक भारतीय तक पहुँचने नहीं दिया! अब हमारी सर्वोत्तम संस्कृति का पुनरुत्थान अतीव आवश्यक है। वह भक्ति-भावना किसी माध्यम से

अत्र तत्र सर्वत्र पहुँच सके, जिससे संकटवर्ती समाज का अवलम्ब मिल सके। तदर्थ आऴवारों की दिव्य सूक्तियों को जन-साधारण में पहुँचाना परमावश्यक है। यह कर्तव्य हिन्दी के ज्ञाता, द्राविड भाषा के विद्वानों का हो गया है।

श्रीयुत. पा. वेंकटाचारीजी, जो दक्षिण के अनुभवी हिन्दी प्रचारक हैं, और जिन्होंने उस क्षेत्र में अपना एक अनुपम स्थान बना लिया है, उस कर्तव्य को निभाने के प्रयत्न का प्रारंभ किया है। यह प्रशंसनीय है।

चतु:सहस्र दिव्य प्रबन्ध माला—आऴवार वैभव के द्वारा आऴवारों के सुन्दर साहित्य भवन के प्राँगण तक पाठकों को पहुँचाया जा चुका है। विश्वास है कि आऴवारों की सूक्ति-सुधा का रस लेने की तृष्णा इससे जागृत हो। इस दिशा में ग्रन्थकार के भविष्य की सफलता का शुभ आरंभ हो। यह हमारी शुभकामना है।

श्री रङ्गनाथ दिव्य मणि पादुका स्मृति:

29-12-1985
श्रीरङ्गम्

श्री :

प्राक्कथन

सारे भारत में अनादि काल से ही वेद, पुराण आदि आध्यात्मिक ग्रन्थों का प्रचार अभिज्ञ महापुरुषों के ज्ञान तथा शोध के लिये होता आ रहा है। उसी प्रकार साधारण मनुष्य मात्र के उज्जीवन तथा मनोरंजन के लिये भक्ति साहित्य के ग्रन्थ भी विद्यमान हैं। दक्षिण में जिस प्रकार श्रीशठकोप, विष्णुचित्त तथा गोदादेवी (आण्डाल) आदि विष्णुभक्तों के भावपूर्ण गानयोग्य पद्य तमिल भाषा में हैं, वैसे ही उत्तर में सूर तुलसी, मीरा आदि सन्तों के भक्तिपूर्ण पद्य प्रचलित हैं। हिन्दी साहित्य के इतिहास से मालूम होता है कि ईसवी पन्द्रहवीं सदी में श्री रामानन्द दक्षिण भारत जाकर कुछ साल ठहरे। उन्होंने दक्षिण के श्रीसंप्रदाय तथा आळ्वार साहित्य के रस को उत्तर भारत में ले जाकर चखाया था। यद्यपि दक्षिण भारत का संत-साहित्य द्रमिड भाषा में है और उत्तर का व्रज आदि में, जिससे भाषा-भेद हैं, तथापि भक्ति-प्रवाह में तो कोई भेद नहीं। भेदाभाव ही नहीं, अधिक साम्य भी है। श्री विष्णुचित्त (पेरियाळ्वार) की पद्यमाला और सूर-पदावली, कुलशेखर की गाथाएँ और तुलसी का मानस, आण्डाल के प्रेमगीत और मीरा के भजन आदि वात्सल्य, भक्ति तथा नायिकाभाव आदि नव विध भक्ति की झलक मिलती है। आत्म समर्पण तो सभी का एकमात्र उपाय है—भगवत्प्राप्ति तथा सेवा का।

तमिऴनाडु के आलवारों की जीवनी और भावपूर्ण पद्यों की मधुरता को भाषाभिज्ञ भक्तों के आगे समर्पित करने की इच्छा से इस ग्रन्थ की रचना हुई है। इसके लेखक हैं पण्डित श्री वेंकटाचारी जो दक्षिण भारत में लगभग चालीस साल से हिन्दी प्रचार के विभिन्न

क्षेत्रों में सफलतापूर्वक काम कर चुके हैं और दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा के प्रधान सचिव के पद में (स्थानापन्न) रहकर भारत भर में नाम कमा लिया है। उनकी मातृभाषा है तमिल, जो आळ्वारों की गाथाओं की है और जीवन-भाषा है हिन्दी, जो राष्ट्रभाषा है। वैष्णव कुल में जन्म लेने के कारण आळ्वारों के तथा उनके प्रबंधों के प्रति उन्हें जननाधीन प्रेम एवं शिक्षाधीन ज्ञान है। उनका वह प्रेमसहित ज्ञान हिन्दी भाषा के रूप में इस ग्रन्थ में प्रकट होता है।

अब इस ग्रन्थ को तीन भागों में प्रकाशित करने का विचार है। पहले में श्री शठकोप (नम्माळ्वार), मधुरकवि, श्री विष्णुचित्त (पेरियाळ्वार) और गोदादेवी (आण्डाल) आदि चार सन्तों की जीवनी तथा उनके वैभव एवं महिमा का वर्णन है; दूसरे भाग में तमिलनाडु के बाकी आठ वैष्णव सन्तों (आळ्वारों) के। तीसरे में उनके चतुःसहस्र दिव्य प्रबंध से कुछ चुने हुए पद्यों का सरल हिन्दी में अनुवाद होगा।

आशा है कि उत्तम भक्तों की गाथाओं का हिन्दी क्षेत्र में स्वीकार होगा और इन्हें पढ़कर लोग आनंद उठायेंगे और अपने को उज्जीवित बनायेंगे।

तांबरम सेनटोरियम
मद्रास
9-12-85

— श्रीनिवास राघव

समर्पण

पुण्य भूमि भारत हमारा देश है। यह बहु-भाषा भाषी देश होने पर भी, प्राचीन काल से लेकर 'भक्ति' हमारे देश की भावात्मक एकात्मकता का एक प्रबल साधन रहती आयी हैं, आजकल भी है और आगे भी रहेगी। इसका प्रतिबिंब हम भारतीय साहित्य में पाते हैं जो अक्षुण्ण है।

श्रीमन् नाथमुनि के बाद आचार्य रामानुज ने (1017 - 1137) (जन्म स्थान : श्रीपेरुंपुदूर, मद्रास से लगभग 30 कि.मी.) विशिष्टाद्वैत सिद्धांत (श्री वैष्णव सिद्धांत) का पुनरुद्धार करके, व्यापक रूप से उसका प्रतिपादन किया। उनके और अनके शिष्यों के द्वारा इसका प्रचार और प्रसार समूचे देश में हुआ।

यह कथन प्रसिद्ध है—

"भक्ति द्राविड उपजी, उत्तर लाए रामानन्द"

आचार्य रामानुज के एक शिष्य (अनुयायी) श्री रामानन्द (1370-1440) की वाणी के द्वारा (हिन्दी में) यह सिद्धांत उत्तर भारत में भी (15-वीं शताब्दी में) व्याप्त हुआ और जनजीवन को अनुप्राणित किया। इसमें हिन्दू धर्म के सभी तत्वों का समावेश और भारतीय वेदांत तत्व का दिल और दिमाग पाते हैं।

इसका प्रतिपादन और प्रचार भारतीय जनता की भाषाओं में होने लगा। यह सबके लिए ग्राह्य रहा और संपूर्ण भारत ने इसे अपनाया।

वैष्णव सिद्धान्त का मूल 4000 दिव्य प्रबन्ध में (तमिल ग्रंथ) मिलता है, जो आचार्य रामानुज का प्रबल प्रेरणा श्रोत और सशक्त साधन

रहा है। इससे उन्होंने आवश्यक मार्गदर्शन प्राप्त किया। भगवत् प्रेम सागर में निमग्न 12 आळ्वारों की अनुगृहीत श्री सूक्तियाँ इस ग्रंथ में संगृहीत हैं, जो आळ्वारों के हृदय से अवशात् (तमिल भाषा में) प्रकट हुई। यह एक राष्ट्रीय संपदा है, जिसका सर्वव्यापक, सर्वदेशीय एवं सर्वकालीन महत्व है। आज भी इसमें प्रतिपादित विषय सत्य एवं ग्राह्य हैं, जो मूलतः भक्ति है।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि प्राचीन काल से लेकर भारतीय जनता के विभिन्न अंगों, साहित्य एवं बिभिन्न भाषाओं के बीच आदान प्रदान का महत्वपूर्ण कार्य उपयोगी एवं लाभकारी स्थापित हुआ है। आज तो यह एक सामाजिक और राष्ट्रीय आवश्यकता हो गई है।

यह अभीष्ट है कि आळ्वार और चतुःसहस्र दिव्य प्रबन्ध का परिचय सभी भारतवासियों को प्राप्त हो और बढ़े। आळ्वारों की श्री सूक्तियाँ भारत के घर-घर पहुँचे। यह उत्तम है कि नित्यप्रति इसका श्रद्धापूर्वक पाठ हो जो सबके लिए कल्याणकारी एवं शांतिप्रदायक सिद्ध होगा।

पूज्य श्री आचार्यवर श्रीरंगम श्रीमत् आंडवन् स्वामीजी का अनुग्रह रहा है कि मुझे चतुःसहस्र दिव्य प्रबन्ध से संबन्धित उनके कई प्रवचन समय-समय पर सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। आपकी प्रेरणा से दिव्य प्रबन्ध का पाठ एवं अध्ययन का सिलसिला आरंभ हुआ। इस बीच इससे संबन्धित अनेक ग्रंथों का अध्ययन और कई विद्वान और भक्त मनीषियों के सत्संग का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

आळ्वार और आचार्य के अनुग्रह से इस दिशा में एक सार्थक सेवा कार्य में लगने की प्रेरणा प्राप्त हुई—अर्थात 12 आळ्वारों के वैभव एवं उनकी श्री सूक्तियों के संबन्ध में हिन्दी में प्रकाशन और उनका प्रचार। आशा है कि यह सेवा कार्य सबके लिए ग्राह्य एवं उपयोगी सिद्ध होगा।

इस पुस्तक में (आळ्वार वैभव—भाग-I) चतु:सहस्र दिव्य प्रबन्ध की साधारण जानकारी और पूज्य नम्माळ्वार (शठकोप), मधुर कवि आळ्वार, पेरियाळ्वार एवं आंडाल (गोदा) के वैभव एवं उनकी श्री सूक्तियों का अति संक्षिप्त परिचय मिलेगा। (भाग-II आदि का विवरण पृष्ठ सं. 68 में दिया गया है।) भाषा और भाव में सरलता का विशेष ध्यान रखा गया है।

इस निवेदन के साथ चतु:सहस्र दिव्य प्रबन्धमाला—आळ्वार वैभव—भाग-I को मेरे आचार्य परमपूज्य श्रीमत् आंडवन् स्वामीजी के 80 वें तिरुनक्षत्र के शुभ अवसर पर, उनके पवित्र चरणारविन्द में श्रद्धापूर्वक समर्पित कर रहा हूँ।

यह पुस्तक पूज्य आचार्य स्वामीजी के अनुग्रह का ही प्रसाद है जो पाठकों की सेवा में प्रस्तुत है।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि तिरुमल-तिरुपति देवस्थान के द्वारा प्रकाशित "सप्तगिरि" मास पत्रिका में समय-समय पर मेरे लेख प्रकाशित कर उसके प्रबन्धक गण और संपादक ने मुझे प्रोत्साहित किया है। 4000 दिव्य प्रबन्ध एवं नम्माळ्वार संबन्धी लेखों का (पुस्तक में प्रकाशन की दृष्टि से) संशोधन एवं संवर्धन करके, वे इस पूस्तक में दिए गए हैं।

इस संबन्ध में पंडित श्री ए. श्रीनिवासराघव, एम.ए., मद्रास का मार्गदर्शन एवं उनके अमूल्य सुझाव चिर-स्मरणीय हैं। उनका प्राक्कथन भी आप अन्यत्र पढ़ेंगे।

इसके लिए उनको मेरा धन्यवाद है।

जिन महानुभावों ने उचित प्रेरणा, मार्गदर्शन एवं सहयोग देकर इस पवित्र कार्य को आगे बढ़ाने में प्रोत्साहित किया, उन सबको एवं ग्रन्थकारों के प्रति बड़ा आभारी हूँ, नत मस्तक हूँ।

हिन्दी प्रचार प्रेस (दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास द्वारा संचालित) के प्रबन्धक गण और कार्यकर्ताओं के सक्रिय सहयोग से इसकी सुन्दर छपाई हुई है।

उन सबको मेरा धन्यवाद है।

विश्वास है कि यह पुस्तक सभी पाठकों को पसन्द आएगी। आळ्वारों के अनुग्रह से सबको शान्ति प्राप्ति होगी।

इस संबन्ध में आवश्यक सुझाव, सुधार एवं मार्गदर्शन के लिए हमेशा आभारी रहूँगा।

"भगवान हैं सब का, और सब हैं भगवान के"
आळ्वार के श्रीपादों की जय हो।

मद्रास
फाल्गुन-पुष्य
21-3-'86

सेवा में,
पा. वेंकटाचारी

समर्पण

मेरे परम पूज्य

माता पिताजी को

पुण्य स्मृति में—

प्रकाशित और समर्पित

चतु:सहस्र दिव्य प्रबन्ध माला

आळ्वार-वैभव—भाग - 1

बारह आऴ्वारों का संक्षिप्त परिचय

क्रम. सं.	आऴ्वारों का नाम	जन्म नक्षत्र	महीना	जन्म स्थान	अंश-श्रीमन् नारायण के आयुध, आभूषण परिजन आदि के अंश का अवतार	मगला शासित दिव्य क्षेत्रों की संख्या
1.	पोय्है आऴ्वार	तिरुवोणम (श्रवण)	आश्विन्	कांचीपुरम (मद्रास के पास)	पांचजन्य नामक शंख	6
2.	भूतत्ताऴ्वार	श्रविष्टा	आश्विन्	महाबलिपुरम (मद्रास के पास)	कौमोदकी नामक गदायुध	13
3.	पेयाऴ्वार	शतबिग	आश्विन्	मइलापूर (मद्रास)	नन्दक नामक खड्ग	15
4.	तिरुमऴिशै आऴ्वार	मघ	पौष	तिरुमऴिशै (मद्रास के पास)	सुदर्शन नामक चक्र	16
5.	नम्माऴ्वार	विशाखा	वैशाख	आऴ्वार तिरुनगरी (तिरुनेलवेली ज़िला)	शेनैनाथन	36
6.	मधुरकवि आऴ्वार	चित्रा	चैत्र	तिरुक्कोलूर (तिरुनेलवेली ज़िला)	कुमुद	*

7. कुलशेखर आळ्वार	पुनर्वसु	माघ	कोल्लिनगर (केरल)	कौस्तुभ नामक नीलरत्न	8
8. पेरियाळ्वार	स्वाती	ज्येष्ठ	श्रीविल्लिपुत्तूर (कामराजर ज़िला)	श्री गरुड	19
9. आंडाल	पूर्वफ़लगुनी	आषाढ	,,	भूमिदेवी	11
10. तोंडरडिप्पोडि आळ्वार	ज्येष्ठा	मार्गशीर्ष	तिरुमंडङ्गुडी (तंजाऊर ज़िला)	वैजयन्ती नामक वनमाला	4
11. तिरुप्पाणाळ्वार	रोहिणी	कार्तिक	तिरुउरैयूर (तिरुच्ची ज़िला)	श्रीवत्स	3
12. तिरुमंगै आळ्वार	कृत्तिका	कार्तिक	तिरुवालि (तंजाऊर जिला)	शार्ङ्ग नामक धनुष	86

* अपने गुरु नम्माळ्वार की स्तुति मात्र

आळ्वारों के अनुगृहीत दिव्य प्रबन्धों का नाम, एवं सूक्तियों की (पाशुरंगल) संख्या का विवरण पृष्ठ सं. 3 में दिया गया है ।

चतुःसहस्र दिव्य प्रबन्ध

भारतवर्ष में विष्णु भक्ति की परंपरा अनादि काल से चली आती है। भारतीय साहित्य इसका बड़ा प्रमाण है। भारत में प्राचीन काल से भक्ति की भावना देश की भावात्मक ऐक्य की, जोडनेवाली महान् शक्ति रही है और आज भी है।

श्री मद्भागवत् पुराण के एक प्रसिद्ध श्लोक में (स्कन्ध-11, अध्याय-5) यह भाव व्यक्त है कि कलियुग में द्राविड/तमिल देश की कावेरी, ताम्रपर्णी और पयस्विनी (पालार) आदि महा नदियों के किनारे, कई भगवद्भक्तों का अवतार होगा, जिनके द्वारा भक्ति का व्यापक प्रचार और प्रसार होगा।

यह सर्व विदित है कि दक्षिण भारत कई भगवद्-भक्तों और आचार्यों का अवतार-स्थल रहा है। इन पूज्य भक्तों में 12 भक्त, आऴ्वार (दिव्य सूरि) के नाम से विख्यात हैं। भगवत् प्रेम सागर में निमग्न होने के कारण थे आऴ्वार कहलाए गए। ("आऴ्वार" तमिल शब्द है) इनका जन्म विविध जातियों में हुआ था।

दक्षिण भारत में आऴ्वारों के आर्विभाव के काल को भक्तिमार्ग का सूर्योदय समय बता सकते हैं। जहाँ उपनिषदों में प्रधानतः ज्ञान मार्ग का प्रतिपादन है,

भगवद्गीता में कर्म मार्ग की श्रेष्ठता है, वहाँ आऴवारों के दिव्य प्रबन्ध में भक्ति मार्ग का प्रतिपादन है, जिसका मूल वेद है। आऴवारों ने कोई नया मार्ग या पंथ नहीं चलाया। इन्होंने भारत की प्राचीन परंपरा के ऋषि मुनियों का अनुकरन किया।

ये भावुक, भक्त और कवि तो थे ही और भगवत् प्रेम-सागर में निमग्न थे। इन्हें भगवान की निर्हेतुक कृपा से, सहज रूप से, ज्ञान, भक्ति और वैराग्य आदि प्राप्त हुए। इस तरह भगवान की निर्हेतुक कृपा से, उनके दर्शन जनित, इनकी भक्ति भावनाएँ, सुन्दर तमिऴ भाषा की गीतियों (सूक्तियों) में इनके हृदय से अवशात् प्रकट हुई। इनकी कुल चतु:सहस्र (4,000) "पाशुरंगल" (सूक्तियाँ) हैं, जिससे यह चतु:सहस्र दिव्य प्रबन्ध के नाम से विख्यात है। इनमें कुल 24 प्रबंध हैं। (पाशुरंगल तमिल शब्द है।) यह द्राविड वेद भी कहा जाता है।

दिव्य प्रबन्ध को वेद का अनुवाद समझना गलत होगा। यह तो वेद और वेदांत के सार व सनातन तत्व की अनुभूति प्राप्त करके, उसे माननेवाले श्रेष्ठ भगवद्-भक्तों के मानसिक उत्थान, आनन्द तथा आत्मज्ञान का प्रतिबिंब है।

इन आऴवारों के शुभनाम और उनकी सूक्तियों (पाशुरंगल) का विवरण निम्नप्रकार हैं :—

सं.	आळ्वारों का नाम	प्रबन्धों का नाम	पाशुरंगल संख्या	कुल
1	पोय्है आळ्वार	मुदल तिरु अन्दादि	100	100
2	भूतत्ताळ्वार	इरण्डाम् तिरु अन्दादि	100	100
3	पेयाळ्वार	मून्र्राम तिरु अन्दादि	100	100
4	तिरुमळिशै आळ्वार	1. नान् मुहन तिरु अन्दादि	96	
		2. तिरुच्चन्द विरुत्तम	120	216
5	नम्माळ्वार	1. तिरुविरुत्तम	100	
		2. तिरु आशिरियम	7	
		3. पेरिय तिरु अन्दादि	87	
		4. तिरुवाय्मोळि	1102	1296
6	मधुर कवि आळ्वार	कण्णिनुण शिरुत्तांबु	11	11
7	कुलशेखर आळ्वार	पेरुमाल तिरुमोळि	105	105
8	पेरियाळ्वार	पेरियाळ्वार तिरुमोळि	473	473
9	आंडाल	1. तिरुप्पावै	30	
		2. नाच्चियार तिरुमोळि	143	173
				2574

सं.	आळ्वारों का नाम	प्रबन्धों का नाम	पाशुरंगल संख्या	कुल
				2574
10	तोंडरडिप्पोडि आळ्वार	1. तिरुप्पल्लि एळुच्चि	10	
		2. तिरुमालै	45	55
11	तिरुप्पाणाळ्वार	अमलनादि पिरान्	10	10
12	तिरुमंगै आळ्वार	1. पेरिय तिरुमोळि	1084	
		2. तिरुक्कुरुम् ताँडकम्	20	
		3. तिरुनेडुम् तांडकम	30	
		4. तिरु एळुकूर्रिरुक्कै	1	
		5. शिरिय तिरुमडल	40	
		6. पेरिय तिरुमडल	78	1253
	तिरुवरंगत्तमुदनार	रामनुज नूर्त्तन्दादि		108
	कुल	24		4000

आऴवारों ने वेदांत को एक रसपूर्ण कलात्मक रूप दिया तथा सर्वसाधारण जनता के लिए आकर्षक व ग्राह्य बनाया। इसका फल यह हुआ कि साधारण व्यक्ति जिन्हें आत्मज्ञान या वेदांत का प्रशिक्षण प्राप्त नहीं था, तथा उसका कोई परिचय भी नहीं था, ऐसे लोगों की उन्नति के लिए आध्यात्मिकता को मठ से कुटिया में ले आए। अगर हिन्दू धर्म का दिमाग वेदांत है, तो आऴवारों के गीत उसका हृदय है। इस तरह भक्ति का राजमार्ग आऴवार दिखाते हैं।

इनकी दृष्टि में भगवान के सामने भगवद्भक्तों का जाति भेद, अमीर-ग़रीब का कोई प्रश्न नहीं उठता है, प्रदेश या भाषा का भेद भी नहीं है, प्राचीनता या नवीनता का अभिमान या दुरभिमान भी नहीं होता है, वेश-भूषा का भी कोई महत्व नहीं है, प्रेम-भक्ति ही प्रधान हैं। इन भक्तों ने अपने गीतों के द्वारा देश के लोगों को अज्ञान की नींद से जगाया, और इनके मोह को दूर किया। सुप्त भक्ति भावना को जागृत किया। इन सूक्तियों में कविता, संगीत और भक्ति का सुन्दर सम्मिश्रण है।

इन्होंने प्रेम रूपी भगवान को मंदिरों में देखा, मंदिर के रूप में देखा, क्षेत्र के रूप में देखा, संसार व

जीवन के रूप में देखा। माता, पिता, पति, बालक एवं मित्र के रूप में देखा। प्रेमी के रूप में दर्शन कर प्रेम गीत गाए। पृथ्वी और आसमान, मेघ और बिजली, नक्षत्र तथा प्रकृति आदि इनको सुन्दर भगवान का स्मरण दिलाते हैं। सब भगवान का रूप हैं तथा सबमें अपने प्रिय भगवान का दर्शन करते हैं। समस्त संसार ही ईश्वरमय है तथा इसको संगठित रूप से संचालन करनेवाला भी वही हैं।

भगवान सुन्दरता की ज्योति है, धर्म की ज्योति है। सर्वव्यापी भगवान के द्वारा सभी लोगों का आपसी गठबन्धन है। इस एकता के आधार पर विकसित होनेवाला चरित्र ही धार्मिक जीवन का उच्च स्तर है। ऐसी भावना व चरित्रवाले ही बाहरी और आंतरिक दृष्टि से ज्ञानवीर होंगे। ये भगवान के सच्चे सेनानी हैं और आगे बढ़ते रहते हैं। इनमें कोई अंधविश्वास या अंधभक्ति नहीं है। भगवान का स्मरण होते ही अज्ञान, भ्रम दूर हो जाते हैं। दुःख क्या ? सुख क्या ? दुःख उनकी आत्मशक्ति को, भक्ति को तोलने का संयत्र मात्र है। वे दोनों को समान मानकर, सबको भगवान की कृपा मानकर, उनकी कृपा के

अनुसार जीवन बिताते हैं। इस तरह भक्ति मार्ग से होकर इन्होंने भगवदानुभव प्राप्त किया।

ये आऴ्वार भगवान के विभिन्न अंश जैसे सुदर्शन, शंख (पाँच जन्य), चक्र गदा, कौस्तुभ, श्रीवत्स आदि के प्रतिरूप (अवतार) माने जाते हैं। देश के निवासियों के संस्कार, चिंतन और समाज के विकास पर इन आऴ्वारों के व्यक्तित्व का, इनके भक्ति अभियान का गहरा और स्थाई प्रभाव पड़ा।

आऴ्वारों का भक्ति अभियान, दक्षिण के कोने-कोने में ही नहीं, बल्कि समस्त भारत में फैला। यह सार्वभौमिक एवं व्यापक है। इनके उपदेश संसार के मानवों के आत्म ताप को, आत्म दुःख को दूर करता है। इनके अनुसार भक्ति का अधिकार सबको प्राप्त है। भक्ति के क्षेत्र में कोई डर या संकोच की भावना नहीं है, कोई शर्त या व्यापारिक मनोवृत्ति नहीं है—संपूर्ण शरणागति है। प्रेम जनित भक्ति, भक्ति के लिए है। जन साधारण अर्थात् मामूली व्यक्ति के प्रति गहरे प्रेम के कारण भक्ति को साधारण मनुष्य तक लाए। भक्ति-मार्ग को आकाश से भूमि पर ले आए—स्वयं भगवान भक्तों के बीच आया।

जैसे आळ्वार नाम से ही मालूम होता है, ये प्रेम जनित भक्ति में लीन हैं। अर्चावतार की यह भक्ति सिर्फ सगुण भक्ति या मूर्ति-पूजा मात्र नहीं है। भक्त की प्रार्थना के अनुसार यह जीवन्त-प्रेम है; वे भगवान को जिस रूप में देखते हैं, या दर्शन करना चाहते हैं, उसी रूप में, तत्काल वहीं पर भगवान मूर्तिमान होता है। ये प्रतीकात्मक भक्त नहीं हैं; जन्मजात भक्त हैं। इनके अनुभव व भावनाएँ संपूर्ण रूप से आध्यात्मिक हैं। इनके संदेश जन-साधारण तक के लिए अनुकूल, सरल एवं आध्यात्मिक है। यह विद्वान व अपढ़, अमीर-गरीब, स्त्री-पुरुष, छोटे-बड़े सब के लिए ग्राह्य एवं समान है, अनुकरणीय है। इनमें आध्यात्मिकता है, सेवा भावना है, जो धर्म के जुड़ुआँ आदर्श हैं।

ये भगवान की निर्हेतुक कृपा से अज्ञान से विमुक्त होकर, भगवान का साक्षात्कार पाकर, तत्वज्ञान, विलक्षण-भक्ति व अद्भुत विरक्ति से विभूषित हुए। कल्याणगुण परिपूर्ण भगवान के विलक्षण दर्शन के अनुभव से, उनके मन में, जो भक्ति की भावात्मक लहरें उठीं, वे ही भगवान के संकल्प से, सुन्दर तमिल भाषा की गीतियों (सूक्तियों) में उनके श्रीमुख से प्रकट हुई—अर्थात् भगवान ने स्वयं इनके द्वारा गवाया।

वैष्णव संप्रदाय के प्रथम आचार्य (नम्माळ्वार के बाद) श्रीमन् नाथमुनि ने कठिन तपस्या करके, उपदेश के द्वारा दिव्य प्रबन्ध का ज्ञान प्राप्त किया। श्रीमन् नाथमुनि, आळ्वार और आचार्यों के बीच की कडी थे। उन्होंने अपने शिष्यों को भी इसका उपदेश दिया। श्रीमन् नाथमुनि और उनके शिष्यों ने और भी व्यापक रीति से देश भर में इस परंपरा को आगे बढ़ाया। श्रीरंगम, तिरुप्पति और कांचीपुरम आदि सभी दिव्य क्षेत्रों में भी इन आळ्वारों के विग्रह की प्रतिष्ठा करके उत्सव मनाने का क्रम शुरू हुआ, जो "अध्ययन उत्सव" के नाम से प्रसिद्ध है। उन दिनों, दिव्य प्रबन्ध का सस्वर पाठ किया जाता है। इस प्रकार इन प्रबन्धों को देश के सभी वैष्णव मंदिरों में प्रमुख स्थान प्राप्त है। इन मंदिरों में, प्रति दिन इसका पाठ भक्तिपूर्वक किया जाता है। आळ्वारों के मंगलाशासन किए गये क्षेत्रों को (मंदिरों को) "तिरुप्पति" कहते हैं। समूचे भारत में ऐसे दिव्य क्षेत्र 108 हैं, जिन क्षेत्रों के अर्चावतार मूर्तियों का, आळ्वारों ने मंगलाशासन किया है।

तिरुवरंगत्तमुदनार के रामानुजनूर्त्तन्दादि (108 गीतियाँ) भी चतुःसहस्र दिव्य प्रबन्ध के अंतर्गत है, जिसमें

आचार्य रामानुज के वैभव का वर्णन है। वैष्णवों की गुरु परंपरा के अनुसार कुछ आळ्वारों का जीवनकाल, कलियुग का आरंभकाल है। लेकिन आधुनिक पुरातत्व विषयक अनुसन्धान करनेवाले, सातवीं आठवीं सदी को मानते हैं।

आळ्वारों का सिद्धांत है कि भगवान एवं भगवद्-भक्तों के कैंकर्य (सेवा) से बढ़कर कोई दूसरा पुरुषार्थ नहीं है।

उपनिषद एवं भगवद्गीता के उपदेश के अनुसार, ये आळ्वार विष्णु भगवान को ही अपना इष्ट दैव मानते हैं और विभिन्न दिव्य क्षेत्रों के भगवान के दर्शन जनित प्रेम और भक्ति भावना से प्रेरित होकर इन्होंने उनका मंगलाशासन किया है।

दिव्य प्रबन्ध के अध्ययन से उस वक्त के तमिल देश की संस्कृति, उसका प्राकृतिक सौन्दर्य, संपन्नता विद्या आदि का पता चलेगा, लेकिन गहराई में पैठकर अनुशीलन करने पर, वह ऐश्वर्य मिलेगा, जिसने देश की आध्यात्मिक शक्ति को और भी दृढ़ और सार्थक बनाया। श्रीमन् नाथमुनि के बाद के आचार्य रामानुज ने विशिष्टा-

द्वैत सिद्धांत के प्रतिपादन और प्रचार में इस संपत्ति को एक बड़ा महत्वपूर्ण साधन माना। आचार्य रामानुज का सक्रिय एवं भक्ति पूर्ण समर्पण भावना, उनके शिष्य रामानन्द के जीवन और वाणी के द्वारा उत्तर भारत में भी व्याप्त हुआ तथा जनता को अनुप्राणित किया। रामानन्द के कबीर, तुलसी आदि 12 मुख्य शिष्य हुए थे। यहाँ कबीरदास का निम्नलिखित कथन उल्लेखनीय है।

"भक्ति द्राविड उपजी, उत्तर लाए रामानन्द"

आचार्य रामानुज के बाद, आचार्य स्वामी देशिकन, आचार्य मणवाल महामुनि (श्री वरवर मुनि) आदि सभी आचार्य पुरुषों ने, वेद एवं उपनिषदों के साथ, उसी भाँति, चतुः सहस्र दिव्य प्रबन्ध का भी अध्ययन एवं अध्यापन किया। उन्होंने आऴवारों के द्वारा बोए गए भक्ति रूपी बीज का पालन पोषण किया और दोनों का समन्वय करके उभय वेदांत तत्वों का उत्कृष्ट प्रतिपादन किया। इसलिए ये उभय वेदांती कहलाए जाते हैं। संस्कृत भाषा में वेद-उपनिषदों के जो गूढ़ तत्व हैं, उन सबको, भक्त आऴवारों ने मधुर तमिल भाषा में सर्वजनों के लिए सुलभ एवं सुगम बनाया, जिसका मूल आधार भक्ति है, शरणागति है। भगवान के सौलभ्य, वात्सल्य, सौशील्य और कारुण्य को सब के लिए उपलब्ध कराया।

इस प्रकार इन भक्तों ने समस्त संसार के मानवों को उज्जीवन का मार्ग दिखाया है ।

"आऴवार के श्रीपादों की जय हो"

विभिन्न 12 आऴवारों के वैभव, उनकी सूक्तियों और सिद्धांतों के संबन्ध में आगे के अध्यायों में विचार करेंगे ।

नम्माळ्वार
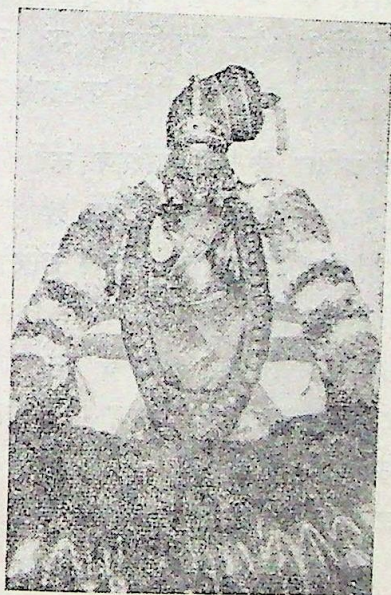
स्तुति पद्य

भक्तामृतं विश्वजनानु मोदनं,
सर्वार्थदं श्री शठकोप वाङ्मयम् ।
सहस्रशाखोप निषत्समागमं,
नमाम्यहं द्राविड वेदसागरम ।।

—श्रीमन् नाथमुनि

(नम्माळ्वार की श्री सूक्तियां भक्तों के लिए अमृत हैं। सभी जनों को सतत आनन्द विभोर करते

हुए सभी पुरुषार्थों का प्रदान करता है। इसमें सहस्र शाखाओं के सामवेद और उपनिषदों का समागम है। यह द्राविड वेद सागर है, जिसकी मैं वंदना करता हूँ।)

यह सर्वविदित है कि दक्षिण कई भगवद्भक्तों और आचार्यों का अवतार-स्थल रहा है। इन पूज्य भक्तों में 12 भक्त, आऴवार (दिव्य सूरि) के नाम से विख्यात हैं। आऴवार तमिऴ भाषा का शब्द है—भगवत् प्रेम सागर में निमग्न होने के कारण आऴवार ! ये दिव्य सूरि भगवान के ही अंश माने जाते हैं और संसार के उज्जीवनार्थ इस संसार में भगवान के संकल्प के अनुसार अवतीर्ण हुए। इन्हें भगवान की निर्हेतुक कृपा से, सहज भावसे ज्ञान, भक्ति और वैराग्य आदि प्राप्त हुए। इनमें नम्माऴवार सबसे प्रधान हैं और आप वैष्णव संप्रदाय के सर्वप्रथम आचार्य भी हैं। यह माना जाता है कि दूसरे आऴवार इनके अवभव हैं और ये अवयवी (अंगी) हैं। शठकोप, वकुलभूषण, परांकुश मुनि, मारन्, कुरुहैप्पिरान, तिरुक्कुरुहूर नंबि, आदि इन्हीं के शुभ नामांतर है।

भगवान ने अनुभव किया कि अपने सेनानायक विश्वक्सेन के अंशभूत—एक महा भगवद्भक्त के अवतार

के द्वारा संसार के उज्जीवन का समय आ गया है। इनके माता-पिता होने का सौभाग्य ताम्रपर्णी नदी किनारे स्थित तिरुक्कुरुहूर (वर्तमान नाम:—आळ्वार तिरुनगरी, तिरुनेलवेली ज़िला, तमिलनाडु राज्य) के निवासी उडैयनंगै-कारियार दंपति को मिला। कारियार के पिता पोर् कारियार थे, जो वेलालर कुल (कृषक) के थे। परंपरा से ही यह परिवार भक्त परिवार था और पोर् कारियार उस क्षेत्र के क्षेत्रीय नृप थे। यही नम्माळ्वार का अवतार स्थल है। वैशाखी पूर्णिमा के दिन (नक्षत्र: विशाखा) इनका अवतार हुआ था। बालक के दिव्य मंगल तेजस् को देखकर माता-पिता के आनन्द की सीमा न रही।

भगवान ने इनके आविर्भाव के पहले ही, सर्दी-गर्मी से इनकी रक्षा का प्रबन्ध कर दिया था। अपने आदिशेषण को (तिरुवनन्दाळ्वान्) तिरुक्कुरुहूर में एक इमली के पेड़ के रूप में आविर्भाव करा दिया था। यह एक सदा जागृत इमली का पेड़ है—इसके पत्ते रात दिन खुले रहते हैं—तमिळ् में उरंगाप्पुलि। यह अब भी तिरुक्कुरुहूर के आदिप्परान मंदिर में है।

इस बालक ने तो दूसरे बालकों की तरह मानव प्रकृति के अनुसार कोई व्यवहार नहीं किया। यहाँ

तक कि, न तो माँ का दूध पिया था न आँखें ही खोलीं। लेकिन महा आश्चर्य की बात यह रही कि बालक पूर्ण रूप से स्वस्थ रहा और कांतिपूर्ण भी। जन्म के 12-वें दिन, इनके माता पिता वंश-परंपरा के अनुसार बालक को स्थानीय आदिप्पिरान मंदिर में ले गये। समस्त लौकिक व्यवहार से दूर और सांसारिक प्रकृति के अनुसार न होने से बालक का नाम "मारन्" रखा गया। तमिळ शब्द 'मारन्' का अर्थ=विलक्षण याने लोक विलक्षण।

यह भी विलक्षणता की बात है कि बालक के जन्म लेते समय जब 'शठ' नामक वायु ज्ञानी बालक को अज्ञानी बनाने के उद्देश्य से उसका स्पर्श करने आयी तब तुरन्त बालक ने अपने हुँकार मात्र से उसे दूर कर भगा दिया। वह निकट आ ही नहीं पायी। इसलिए इनका नाम शठकोप भी हुआ।

(माता के गर्भ में स्थित ज्ञानी बालक को इस संसार में जन्म लेते समय "शठ" नामक वायु अपने स्पर्श मात्र से अज्ञानी बना देती है। इसी कारण से बालक अपना ज्ञान खोकर, अज्ञानी बनकर रोने लगता है। यह संसार की रीति चली आती है।)

माता ने जब बालक को मंदिर के भगवान के सामने दंडवत डाला, तब वह बालक घुटनों के बल चलकर

इमली के पेड़ के नीचे योगासनस्थ हो गया। माँ ने बालक को अपनी गोद में उठा लेने का प्रयत्न किया। वह हिला तक नहीं। इस दिशा में पिता का प्रयत्न भी असफल रहा। लोक-व्यवहार के कार्यों से विमुख होने पर भी, बालक के विकास में कोई कभी नहीं पायी गयी। माता पिता को और दूसरों को इसका क्या पता है कि वे पूज्य मधुर कवि की प्रतीक्षा में हैं।

इस बीच एक घटना भी हुई, जिसका ज्ञान संसार के लोगों को नहीं था। भगवान श्रीमन् नारायण ने शठकोप को शेनैमुदलियार के द्वारा, सभी मंत्रार्थों का उपदेश दिला दिया था।

इस तरह सभी तत्वोपदेश प्राप्त शठकोप दिव्य तेजस् के साथ (सदा जागृत) इमली के पेड़ के नीचे परतत्व के ध्यान में लीन होकर समाधिस्थ रहे। इस तरह 16 वर्ष व्यतीत हुए।

इनके समकाल के मधुर कवि सूरि भारत के समस्त दिव्य क्षेत्रों और तीर्थ-स्थानों की यात्रा करते हुए अयोध्या (वर्तमान उत्तर प्रदेश राज्य) पहुँच गये थे। वहाँ योगाभ्यास में लीन थे।

एक दिन की बात है, जब ध्यान से आँखें खोलीं, तब सुदूर दक्षिण में एक ज्योति-पुंज दृष्टिगोचर हुआ।

न. 2

वह दिव्य और मनोज्ञ था। उसका साक्षात् पर्शन करने, उसी दिशा दक्षिण की ओर आगे बढ़े। वह सिर्फ़ रात को दीखता था और दिन में छिप जाता था और उसी दिशा दक्षिण की ओर आगे बढ़ता था। इन्होंने भी ज्योति पुंज का अनुगमन किया। इस तरह कई दिनों की यात्रा के बाद, तिरुक्कुरुहूर पहुँचे। वह प्रकाश उस पवित्र दिव्य क्षेत्र के आदिप्पिरान मंदिर के अन्दर जाकर विलीन हो गया। इस पर उनको बड़ा आश्चर्य हुआ। वहाँ के भक्तों से वार्तालाप करते हुए, उनके द्वारा शठकोप के आश्चर्यजनक जीवन के बारे में अवगत हुए। मधुर कवि मंदिर के अंदर जा पहुँचे। वहाँ योगासनस्थ शठकोप के दर्शन किए। उनकी स्थिति जानने की उत्कंठा हुई कि क्या इनमें प्रज्ञा है?

एक छोटा-सा कंकड़ उठाकर उनके निकट नीचे डाला। कंकड की ध्वनि सुनते ही, आळ्वार ने अपने जीवन में सर्वप्रथम अपनो आंखें खोलीं। चारों तरफ़ व्यापक रूप से अवलोकन किया। मधुर कवि सूरि को कटाक्ष किया और उनके गूढ एवं तत्वार्थपूर्ण प्रश्न का उत्तर देकर अनुगृहीत किया।

प्रश्न यह था :—मृत के पेट में से "छोटा" पैदा हो तो वह किसे खाकर कहाँ पड़ा रहेगा ?

उत्तर :—उसी को खाकर वहीं पर पड़ा रहेगा। "मृत" शब्द जड वस्तु (अनित्य प्रकृति का शरीर) एवं "छोटा" जीवात्मा का बोध कराता है।

प्रश्न का तात्पर्य है कि जब जडवस्तु-शरीर से जीवात्मा का संबंध हो तो, वह कैसा अनुभव करते हुए कहाँ रहेगा ?

प्रश्न के उत्तर में नम्माळ्वार ने एक गूढ वेदान्त विचार को सूत्र के रूप में प्रकट किया। जीवात्मा शरीर संबन्धी सुख दुःखों का—शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध आदि—अनुभव करते हुए उसी शरीर में पड़ा रहेगा।

शठकोप की मधुर एवं पवित्र वाणी सुनकर मधुर कवि आनन्द विभोर हुए। वृद्ध योगी ने उनके चरणों में दण्डवत नमस्कार किया। उनको आचार्य प्राप्त हो गये। जीवन धन्य हो गया।

गुरु परंपरा में कहा गया है कि श्रीमन् नारायण ने महालक्ष्मी समेत गरुडासीन होकर शठकोप को दर्शन

दिए । साथ ही आळ्वार ने अनेक दिव्य क्षेत्रों की अर्चामूर्तियाँ के दर्शन भी पाए । भगवान के साक्षात दर्शन से उनके कल्याण गुणों का अनुभव किया ।

भगवान के दर्शन से जनित इनका अनुभव तथा भावनाएँ हृदय में न समाते हुए, तमिळ भाषा की गीतियों में अवशात् निकल पड़ीं । अर्थात् भगवान ने इनके द्वारा अपना गुण गान गवाया । इनके चार प्रबन्ध चार वेदों का सार माने जाते है ।

1. तिरुविरुत्तम—ऋग्वेद का सार—100 सूक्तियाँ
2. तिरुवाशिरियम—यजुर्वेद का सार—7 ,,
3. पेरिय तिरुवन्दादि—अथर्ववेद का सार—87 ,,
4. तिरुवाय्मोळि—सामवेद का सार—1102 ,,

इनमें से तिरुवाय्मोळि प्रधान है, एवं 4000 दिव्य प्रबन्ध में इसका प्रधान स्थान है । तिरुवाय्मोळि में कुल 1102 सूक्तियाँ (तमिळ भाषा में पाशुरम) हैं । 100 दशकों के 10 शतक हैं । एक-एक दशक में दस प्रधान सूक्तियाँ और एक फलश्रुति सूक्ति है । इस प्रकार ग्यारह सूक्तियाँ हैं । केवल एक दशक में फलश्रुति के साथ 13 सूक्तियाँ हैं । इसमें भगवान के बारह नामों

का कीर्तन, एवं वर्णन किया जाता है। ये शब्द पुष्टि और अर्थ पुष्टि से परिपूर्ण हैं।

भगवान के दर्शन और उनके कल्याणगुणों की अनुभूति के भावावेश में, भगवान के विशेष संकल्प से, सुन्दर तमिऴ भाषा की गीतियाँ उनके श्रीमुख से प्रकट हुईं। इसका विवरण ऊपर दिया गया है। वाय्मोऴि का अर्थ सत्य वचन अर्थात् वेद भी है। नम्माऴ्वार के सहस्र-गीतियों की (तिरुवाय्मोऴि) एक महत्वपूर्ण विशेषता है कि इसमें भगवान के सिवा, और किसी दूसरे विषय का प्रतिपादन नहीं होता है। कोई एक सूक्ति भी ऐसी नहीं है जिसमें भगवान का तथा उनके मंगलमय गुणों का प्रतिपादन या उल्लेख न हुआ हो। साथ ही मुमुक्षु के अवश्य ज्ञातव्य अर्थ-पंचक याने, परमात्मा, जीवात्मा, मोक्ष, उपाय एवं विरोधियों के स्वरूप का विस्तृत परिचय है। इसलिए इसका नाम ही (इसकी टीकाओं का नाम भी) भगवद्विषय हुआ। दूसरे किसी ग्रन्थ को यह विरुद नहीं मिला है। इसलिए वैष्णव संप्रदाय के पूर्वाचार्यों ने तिरुवाय्मोऴि को अपने नित्यपारायण एवं कालक्षेप में मुख्य स्थान दिया।

आऴ्वार के श्रीमुख से अनुभूति की भावना से जो सूक्तियाँ प्रकट हुईं, उनका उपदेश आऴ्वार ने मधुर

कवि आऴवार को दिया। तब से इनकी अखंड समाधि टूट गयी। इस प्रकार नम्माऴवार ने 35 दिव्य क्षेत्रों की अर्चामूर्तियों का मंगलाशासन् किया है। इस संसार में ये सिर्फ़ 35 वर्ष ही रहे। आऴवार ने, इस छोटी-सी 35 वर्ष की अवधि में, सभी सांसारिक बातों से दूर रहकर, अपने जीवन भर में इमली के पेड़ के नीचे आसीन होकर, सिर्फ़ भगवान का ध्यान करते हुए, ब्रह्मानन्द प्राप्त किया।

इनकी गीतियों और इनके सिद्धांतों का सर्वप्रथम प्रचार करने का सौभाग्य पूज्य श्री मधुर कवि को ही मिला। नम्माऴवार के परमपद प्राप्ति के बाद मधुर कवि ने आऴवार तिरुनगरी में इनके दिव्य मगल विग्रह की प्रतिष्ठा करके उत्सव मनाते थे और यशगान गाते थे। इसके कई वर्षों बाद श्रीमन् नाथमुनि और उनके शिष्यों ने और भी व्यापक रीति से देश भर में इस परंपरा को आगे बढ़ाया। श्रीरंगम, तिरुप्पति और कांचीपुरम आदि सभी दिव्य क्षेत्रों में भी आऴवार के विग्रह की प्रतिष्ठा करके उत्सव मनाने का क्रम शुरू हुआ, जो "अध्ययन उत्सव" के नाम से प्रसिद्ध हैं। उस वक्त दिव्य प्रबन्ध का सस्वर पाठ किया जाता है जिसमें तिरुवाय्मोऴि का प्रधान स्थान है।

इस तरह तिरुवाय्मोऴि को देश के सभी वैष्णव मंदिरों में प्रमुख स्थान प्राप्त है और प्रतिदिन इसका पाठ भक्तिपूर्वक किया जाता है।

नम्माऴ्वार की सूक्तियाँ विशेष रूप से तिरुवाय्-मोऴि आनन्द प्रदायक, सभी पुरुषार्थों को देनेवाला, भगवान के मंगल कल्याण गुण रूपी सागर है। तिरुवाय्मोऴि की पहली सूक्ति, पहला शब्द, पहला अक्षर सब श्रेष्ठ और मंगलमय हैं। तमिल भाषा के 'उ' (உ) अक्षर से मंगल का बोध होता है। यह अक्षर मंगलों का भी मंगल करनेवाला है। पहला शब्द "उयरवु" श्रेष्ठता है।

आऴ्वार की भावना में एक क्रम पाया जाता है। भगवान के प्रति इनकी भक्ति विकसित होकर आखिर पर-ब्रह्म में लीन हो जाती है। इनकी मान्यता के अनुसार संपूर्ण विश्व ईश्वरमय है और हमारा मन सब से बड़ा तिरुप्पति (मंदिर) है।

इनकी सूक्तियों के अध्ययन करने से उस वक्त के तमिल देश का प्राकृतिक सौन्दर्य, संपन्नता, विद्या तथा जीवन व्यापन के विकसित संस्कृति का पता चलेगा। लेकिन गहराई में पैठकर, अनुशीलन करने पर वह ऐश्वर्य

मिलेगा, जिसने देश की आध्यात्मिक शक्ति को और भी दृढ़ एवं सार्थक बनाया, जो प्रधानतया प्रेम जनित भक्ति है। इनमें भगवान के परत्व का वर्णन करते हैं। तिरुवाय्मोऴि का प्रथम आरंभ वाक्य ही बड़ा सुन्दर एवं भक्ति की प्रेरणा देनेवाला है।

भगवान कल्याल गुण परिपूर्ण हैं।
"उयरवु अर उयरनलम् उडैयवन्" (तमिल पाठ)

भक्त जन भक्ति से प्रेरित होकर, गायक गाने के लिए और साहित्य प्रेमी तमिऴ साहित्य के अध्ययन के लिए इन सूक्तियों का अनुशीलन करते हैं। ताल, लय सहित गाते हैं, गाते हुए नाचते हैं। इसको भी अपनी पुरानी परंपरा है।

स्वामी वेदान्त देशिकन की मान्यता है कि "तिरुवाय्मोऴि" में पूर्ण रूप से शांति रस है। इस प्रबन्ध का अनुसन्धान करने से परिपूर्ण शांति मिलेगी। संसार सागर की लहरों में पड़कर तड़पनेवालों को शांति प्रदान कर, पार पहुँचाएँगी।

तिरुवाय्मोऴि की प्रथम-सूक्ति में ही आऴवार अपने मन से कहते हैं—

हे मेरे मन ! तू उनके दु:ख दूर करनेवाले जोति-स्वरूप पादारविन्दों का सेवन कर, जाग—

"तुयर अरु शुडर-अडि तोऴदु एऴु एन् मनमे ।"
(तमिल पाठ)

यहाँ "जाग" का बड़ा महत्व है ।

तिरुवाय्मोऴि के द्‌वारा नम्माऴ्वार हमको और समस्त संसार को मोक्षप्रद संदेश और उपदेश देते हैं । यही हमारा उज्जीवन मंत्र है । उक्त मोक्षप्रद उपदेशों पर चलने की सबसे बड़ी शक्ति भी आऴ्वार का अनुग्रह और प्रसाद ही है ।

"आऴ्वार के श्रीपादों की जय हो"

मधुरकवि आळ्वार

स्तुति पद्य

अविदित-विषयान्तरः शठारेः,
उपनिषदाम् उपगानमात्र-भोगः ।
अपि च गुणवशात् तदेकशेषी,
मधुरकविः हृदये मम आविरस्तु ॥

श्रीमन् नाथमुनि

(नम्माळ्वार के (शठारि के) अलावा दूसरे विषयों से अनभिज्ञ, उन्हीं के दिव्यप्रबन्धों के पठन और गान मात्र को ही जीवन का परम लक्ष्य मानकर, उसीमें परमानन्द का अनुभव करनेवाले, उनके गुणों से वशीभूत होकर उन्हीं का अपना एक मात्र स्वामी (शेषी) माननेवाले मधुरकवि मेरे मन में आविर्भूत हों, मेरा अनुग्रह करें ।)

मधुरकवि आळ्वार नम्माळ्वार के समकालीन थे । लेकिन इनका जन्म नम्माळ्वार के कई वर्ष पहले हो गया था, जैसे सूर्योदय के पहले अरुणोदय होता है ।

मधुरकवि आळ्वार का जन्म स्थान तिरुक्कोलूर है । यह स्थान ताम्रपर्णी नदी तट पर, आळ्वार तिरुनगरी से (तिरुनेलवेली ज़िला, मद्रास राज्य) थोड़ी दूर पर

स्थित है। आपका जन्म चैत्र महीने के चित्रा नक्षत्र में हुआ। ये कुमुद गणेश के अंश माने जाते हैं। इन्होंने सभी वेद और शास्त्रों का गहरा अध्ययन किया था एवं वे बड़े ज्ञानी थे। ये संगीत शास्त्र के भी अच्छे ज्ञाता थे।

आध्यात्मिक अनुभव एवं तत्वज्ञान की प्राप्ति से, भौतिक विषयों से विरक्त होकर, भगवान के ध्यान में ही लगे रहते थे। अपने यहाँ से, कई तीर्थस्थानों की यात्रा करते हुए आखिर अयोध्या (उत्तर प्रदेश) पहुँचे। भगवान की प्राप्ति की त्वारा से प्रेरित होकर, वे वहाँ योगाभ्यास में लीन रहते थे। सही मार्ग-दर्शन देकर, आध्यात्मिक आनन्द एवं शांति प्रदान करनेवाले एक गुरु की प्राप्ति के लिए लालायित रहते थे।

एक दिन की बात है। जब ध्यान से आँखें खोलीं, तब सुदूर दक्षिण में एक ज्योति-पुंज दृष्टिगोचर हुआ। वह पुंज लगातार कई दिन रात को दिखाई देता था। पहले तो इसे देखकर उनको बड़ा आश्चर्य हुआ। उनका विचार हुआ कि यह दिव्य और अलौकिक ज्योति है तथा वह ज्योति अपनी आत्मा को दिव्य प्रकाश देनेवाला संकेत दीप है। निकट पहुँचकर उसके दर्शन

करने की इच्छा से प्रेरित होकर दक्षिण की ओर चले, जिस ओर ज्योति पुंज दीखता था। वह ज्योति उसी दिशा में आगे बढ़ने लगी। ये भी ज्योति का अनुगमन करते हुए जाने लगे। इस तरह कई दिन की यात्रा के बाद आळ्वार तिरुनगरी (तिरुक्कुरुहूर) पहुँचे। ज्योति भी उस दिव्य देश के आदिप्पिरान मंदिर के अन्दर जाकर तिरोहित हो गयी।

ये भी मंदिर के अन्दर पहुंचे। वहाँ के भक्तों से वार्तालाप करते हुए, उनसे शठकोप के दिव्य जीवन के बारे में अवगत हुए। उनके दर्शन की तीव्र इच्छा पैदा हुई। वे उस मंदिर के इमली के वृक्ष के निकट पहुँचे। वहाँ उन्होंने योगसानस्थ शठकोप के दर्शन किये। उनकी स्थिति जानने की इच्छा हुई कि क्या इनमें प्रज्ञा है।

मधुर कवि ने एक कंकड लेकर उनके निकट नीचे डाला। इसकी ध्वनि सुनते ही शठकोप ने अपने जीवन में सर्वप्रथम अपनी आँखें खोलीं। मधुर कवि को कटाक्ष किया। उनके गूढ़ एवं तत्वार्थपूर्ण प्रश्न का उत्तर देकर अनुगृहीत किया।

प्रश्न यह था—मृत के पेट में "छोटा" पैदा हो तो वह किसे खाकर कहाँ पड़ा रहेगा?

उत्तर—उसीको खाकर वहीं पड़ा रहेगा। 'मृत' शब्द, जड वस्तु (अनित्य प्रकृति का शरीर) एवं 'छोटा' जीवात्मा का बोध कराता है।

प्रश्न का तात्पर्य है कि जब जड़-वस्तु-शरीर से जीवात्मा का संबन्ध हो तो, वह कैसा अनुभव करते हुए कहाँ रहेगा ?

प्रश्न के उत्तर में शठकोप ने एक गूढ़ वेदांत विचार को सूत्र के रूप में प्रकट किया। जीवात्मा शरीर संबन्धी सुख दुःखों का—शब्द, स्पर्श, रूप, गन्ध आदि—अनुभव करते हुए उसी शरीर में पड़ा रहेगा।

शठकोप की मधुर एवं पवित्र वाणी सुनकर मधुर कवि आनन्द मिभोर हुए। वृद्ध योगी ने वाल शठकोप के चरणों में दण्डवत नमस्कार किया। उनकी मनोकामना पूरी हो गयी। उनको आचार्य प्राप्त हो गए। उनका जीवन धन्य हो गया। शठकोप सूरि भी इन्हीं की प्रतीक्षा में थे। इसके बाद मधुर कवि सारा समय शठकोप के साथ रहकर उनकी सेवा में ही लगे रहते थे।

गुरु परंपरा में कहा गया है कि शठकोप को योग स्थिति में ही, श्रीमन्नारायण ने महालक्ष्मी सहित

दर्शन दिये। भगवान के दर्शन से नम्माळ्वार ने उनके कल्याण-गुणों का अनुभव किया। भगवान के दर्शन से जनित इनका आनन्दानुभव हृदय में न समाते हुए, चार प्रबन्धों के रूप में प्रवाहित हुए।

अनुभूति की भावना से नम्माळ्वार के श्रीमुख से जो सूक्तियाँ प्रकट हुईं उनसे प्रभावित होकर, मधुर कवि ने उन्हें अपनाया और उपदेश के रूप में ग्रहण किया। मधुर कवि ने नम्माळ्वार की सूक्तियों का लिपिबद्ध किया। साथ ही उनकी गीतियों को विविध रागों में गाते हुए उनकी सेवा में लगे रहते थे। उनका मन पूर्ण रूप से इसी कार्य में लग गया। इसके अलावा नम्माळ्वार ने अर्थपंचक का उपदेश भी मधुर कवि को दिया।

मधुर कवि के लिए गुरुभक्ति ही सब कुछ थी। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि मधुर कवि ने अनन्य आचार्य भक्ति एवं उनकी सेवा के द्वारा भगवान का पूर्ण अनुग्रह प्राप्त किया। भक्तों के इतिहास में इसका एक ही दूसरा उदाहरण है। श्री शत्रुघ्न ने अपने भाई एवं राम भक्त भरत के प्रति लगन एवं सेवा के द्वारा श्री रामचन्द्र का अनुग्रह प्राप्त किया।

मधुर कवि आळ्वार की मान्यता थी—आचार्य भक्ति ही भगवान की भक्ति है। गुरु की सेवा ही गोविन्द की सेवा है। इनके प्रबन्ध का नाम "कण्णि नुण् शिरुत्तांबु है, जिसमें 11 सूक्तियां हैं, जो संगीत लय-युक्त और हृदयग्राही हैं। इसमें आचार्य भक्ति की प्रभविष्णुता बतायी गयी है। आचार्य अपनी परमकृपा और सौलभ्य से मानव को इस सांसारिक दुःखों से पार पहुँचाते हैं, भगवान की असीम कृपा का पात्र बनाकर उनका उद्धार करते हैं।

वे नम्माळ्वार को ही अपना भगवान मानते थे, उनके आलावा किसी दूसरी देवता को नहीं। "उनकी मान्यता है कि आचार्य भक्ति द्वारा ही, शिष्य को भगवान की असीम कृपा प्राप्त होगी। सांसारिक बंधनों से छुटकारा मिलेगा। इनका और इनके उपदेशों का वैष्णव संप्रदाय में बड़ा मान है।

कण्णि नुण् शिरुत्तांबु में निम्नलिखित पदावलि (पाशुरम्) बहुत महत्वपूर्ण एवं सार्थक है।

"शॆयळ नन्राहत् तिरुत्तिप् पणि कॊळ्वान्"

(तमिल पाठ)

आचार्य भक्त को अच्छी तरह सुधारकर भगवान के सच्चे भक्त और सेवक बनायेंगे।"

अर्थात् आचार्य अपने शिष्यों को अपनी कृपापूर्ण उपदेशों के द्वारा, सुधारकर भगवान की सेवा में लगा देते हैं एवं भागवतों की गोष्ठी में शामिल करा देते हैं।

कण्णि नुण् शिरुत्तांबु चतुःसहस्र दिव्य प्रबन्ध के 24 प्रबन्धों में से एक है, जिसमें ग्यारह सूक्तियाँ हैं। दस सूक्तियों में गुरु शठकोप की महिमा गायी जाती है। ग्यारहवीं सूक्ति फलश्रुति है। तिरुवाय्मोऴि के पठन के प्रारंभ में एवं समापन पर इसका पाठ किया जाता है।

स्वामी वेदांत देशिकन के शब्दों में—"मधुर कवि आऴ्वार ने शठकोप की सेवा करते हुए संपूर्ण रूप से उनकी शरणागति करके सांसारिक बंधन और दुःखों से छुटकारा पाया।

नम्माऴ्वार की गीतियों और उनके सिद्धांतों का सर्वप्रथम प्रचार करने का सौभाग्य इन्हीं को मिला। नम्माऴ्वार की अवतार-समाप्ति के बाद, मधुर कवि ने आऴ्वार-तिरुनगरी में उनके स्थान पर उनके दिव्य-मंगल विग्रह की, जो स्वयं आविर्भूत था, प्रतिष्ठा करके उत्सव मनाते थे। उन दिनों उनकी सूक्तियों का भी बड़ी श्रद्धा एवं भक्ति से पाठ किया जाता था।

उन दिनों मदुरै में (दक्षिण) तमिल विद्वानों का एक संघ था। उक्त संघ के द्वारा अंगीकृत प्रबंध ही तमिल साहित्य में स्थान पाते थे। भगवान की प्रेरणा से मधुर कवि ने नम्माऴ्वार की निम्न-लिखित सूक्ति को ताल-पत्र पर लिखकर, उनकी परीक्षा करने विद्वानों के हाथ दिया।

कण्णन् कऴलिणै, नण्णुम् मनमुडैयीर !
एण्णुम तिरुनामम्, तिण्णम् नारणमे।
(तमिल पाठ)

(भक्तवत्सल भगवान के श्रीपाद प्राप्त करने की इच्छा रखनेवाले हे भक्त जनो ! तुम्हारे ध्यान करने योग्य नाम नारायण ही है। यह वार्ता निश्चित है।)

(कहने का तात्पर्य है कि ऐसी प्रबल इच्छा मात्र देखकर भगवान प्रसन्न होकर उसे मोक्ष प्रदान करता है।)

पंडित लोग उसे लेकर परीक्षा-स्थान पहुँचे और अन्य प्रबन्धों के साथ उसे भी फलक पर रखा। उसी क्षण, वही एक पद्य फलक पर रहा और बाकी सब नीचे गिरा दिये गये। सब विद्वानों ने शठकोप के प्रबन्धों की प्रशंसा की और विद्वान कवियों ने अपनी-अपनी ओर से भी एक-एक प्रशंसक-पद्य लिखकर उनको समर्पित किया।

न. 3

शठकोप की सूक्तियों क़ा तमिल़ भक्ति साहित्य में उन्नत स्थान प्राप्त है।

मधुर कवि आऴ़्वार की विशेषता है कि वे शठकोप और उनकी सूक्तियों को छोड़कर और किसी विषय का चिंतन ही नहीं करते थे, उन्हीं को अपना एक मात्र आधार और आराध्य देव मानते थे। अपने जीवन भर उनकी सेवा करते हुए, उनकी गीतियों का पठन-पाठन एवं चिंतन-मनन में लगे रहते थे। इस तरह इन्होंने वैष्णव संप्रदाय में बहुत ही उत्कृष्ट स्थान प्राप्त किया। मधुर कवि आऴ़्वार का जीवन ही आचार्य भक्ति का ज्वलन्त उदाहरण है।

आऴ़्वार के श्रीपादों की जय हो।

पेरियाऴ्वार

गुरुमुखम् अनधीत्य प्राह वेदान् अशेषान्
नरपति-परिक्लृप्तं शुल्कम् आदातुकामः ।
श्वशुरम् अमरवन्द्यं रंगनाथस्य साक्षात्
द्विजकुलतिलकं तं विष्णुचित्तं नमामि ।।

—स्तुति-पद्य

[श्री विष्णुचित्त ने भगवान की आज्ञा से पांडिय-राजा के विद्वत् परिषद में, वेदों के सार का प्रतिपादन कर, परतत्व का निर्णय किया, और पांडिय नरेश द्वारा परिकल्पित शुल्क द्रव्य ग्रन्थि (विद्या शुल्क) के स्वामी बने। उन्होंने गुरु मुख से वेदों का अध्ययन नहीं किया, लेकिन वेदों ने उनका वरण किया।—अर्थात् स्वयं भगवान के अनुगृह मात्र से वेदों का ज्ञान प्राप्त किया। वे रंगनाथ भगवान के श्वशुर और द्विजकुल तिलक हैं; उनकी मैं वंदना करता हूँ]

भगवान की प्राप्ति के साधनों में ज्ञान भक्ति एवं प्रेम भक्ति का प्रधान स्थान है। इसके अनुसार भक्तों में भक्ति की दो दशाएँ होती हैं।

(1) ज्ञान दशा (2) प्रेम दशा

ज्ञान दशा में, भक्त भगवान को ही सर्वोपरि एवं रक्षक मानते हैं। भगवान से अपने मंगल को कामना करते हैं।

प्रेम दशा की भावना इससे बिलकुल भिन्न है। अत्यधिक प्रेम के कारण भगवान इनकी रक्ष्य-वस्तु-सा हो जाता है। इस स्थिति में ये भक्त भगवान की रक्षा करने आतुर हो जाते हैं। अर्थात् जीवात्मा और परमात्मा में रक्ष्य-रक्षक के भाव में परिवर्तन हो जाता है। वे भगवान का मंगलाशासन करने लग जाते हैं। यह असाधारण प्रवृत्ति पेरियाळ्वार में विद्यमान है। श्रीविल्लिपुत्तूर (कामराजर ज़िला, तमिलनाडु) पेरियाळ्वार का जन्म-स्थान है।

यह कहा जाता है कि विल्ली नामक एक शिकारी बडा भक्त था। उसने वट-पत्रशायी के लिए एक सुन्दर मंदिर का निर्माण किया। मंदिर के चारों ओर अपने गांव के कई परिवारों को बसाया, जिनमें कई द्विज-कुल के भी थे। यह स्थान आजकल श्रीविल्लि-पुत्तूर के नाम से प्रसिद्ध है।

उन परिवारों में एक मुकुन्द भट्ट भी थे, जिनकी धर्मपत्नी पद्मावती थी। वे श्रीरंगम के रंगनाथ भगवान

के परम भक्त थे और परंपरा से भगवान के कैंकर्य करने-वालों में से थे। उनकी तपस्या के फलस्वरूप जेठ महीना, शुक्ल पक्ष, एकादशी, स्वाती नक्षत्र में श्री विष्णुचित्त का जन्म हुआ, जो आगे पेरियाऴ्वार के नाम से प्रसिद्ध हुए। इनका एक प्रसिद्ध नाम पट्टर पिरान भी है।

ये श्रीमन् नारायण के वाहन गरुड के अंश माने जाते हैं।

भगवान की निर्हेतुक कृपा से ये अपने किशोरा-वस्था में ही, वेदशास्त्र, आगम, इतिहास, पुराण आदि ग्रन्थों के बड़े ज्ञानी बने। अपने यहाँ के भगवान श्री वट-पत्रशायी के बड़े भक्त थे।

उनके मन में ये विचार बराबर उठते रहते थे कि सच्चा ज्ञान प्राप्त करके आत्मोज्जीवन का उत्तम उपाय क्या होगा? सतत चिंतन से उनको यह स्पष्ट हुआ कि भक्ति ही उत्तम साधन है। और भक्ति पूर्ण कैंकर्य ही सर्व श्रेष्ठ है। अतः भगवान को पुष्प-माला समर्पण कैंकर्य को अपनाया और भगवान को प्रतिदिन पुष्प-मालाएँ समर्पित करते थे। यह कृष्णावतार में एक मालाकार की निम्नलिखित कहानी के समान है।

मथुरा में एक मालाकार प्रतिदिन कंस को मालाएँ दिया करता था। कंस के निमंत्रण पर जब श्रीकृष्ण

मथुरा आए तब रास्ते में जाते हुए, श्रीकृष्ण ने मालाकार को देखा, जो सुन्दर मालाएँ लेकर कंस को देने जा रहा था। सुन्दर मालाएँ देखकर श्रीकृष्ण ने उनसे मालाएँ माँगी। श्रीकृष्ण की दैवी शोभा और सौन्दर्य से वशीभूत होकर मालाकार ने सब मालाएँ श्रीकृष्ण को पहनवा दीं। श्रीकृष्ण बहुत प्रसन्न हुए और मालाकार को अनुग्रह किया।

श्री विष्णुचित्त ने, इसके लिए, अपनी ज़मीन में एक सुन्दर नन्दवन लगाया। इसमें कई तरह के पेड़ पौधे लगाए, जिनमें सुन्दर और सुगन्धित पुष्प उगते थे। उनका सुगन्ध चारों ओर फैल रहा था। प्रति दिन श्री विष्णुचित्त तुलसी के साथ चमेली, मल्लिका, मालती, कमल, चम्पक, इरुवाट्चि, कलहार, आदि पुष्प चुनकर मालाएँ गूंथते थे और वट-पत्रशायी को समर्पित करते थे। भगवान ने इनको पसन्द किया और वे बहुत प्रसन्न हुए।

उस वक्त मदुरै में (तमिलनाडु) पांडिय वंश के राजाओं का राज्य चल रहा था। श्री वल्लभदेव उस वक्त के नृपति थे। वे अपनी प्रजा के हित को अपना हित मानकर प्रजा की उन्नति और उनके कल्याण के

प्रयत्नशील थे। इसके लिए श्री वल्लभदेव रात को अपना वेष बदलकर शहर में घूमा करते थे। प्रजा की समस्याओं को हल करके, उनको राहत पहुँचाते थे। प्रजा भी सुखी और संतुष्ट रहती थी।

एक दिन रात को उपरोक्त प्रकार घूमते वक्त राजा की भेंट एक ब्राह्मण से हुई जो एक घर के बाहरी बरामदे में आराम कर रहे थे। वह ब्राह्मण गंगा-स्नान के बाद, वहाँ से रामेश्वरम की यात्रा पर थे। उस ब्राह्मण के तेज़ से राजा बहुत प्रभावित हुए। राजा ने उस ब्राह्मण से, अपने आत्मोत्थान के लिए उचित उपदेश देने की प्रार्थना की। ब्राह्मण ने एक संस्कृत श्लोक सुनाया जिसका भाव निम्न-प्रकार है।

"बरसात के महीनों के लिए दूसरे महीनों में, रात की आवश्यकता-पूर्ति के लिए दिन में, बुढापे के जीवन-यापन के लिए यौवनावस्था में, परलोक की प्राप्ति के लिए इसी मनुष्य जन्म में प्रयत्न कर साधन अर्जित कर लेना चाहिए"

उक्त वचनों से राजा बहुत प्रभावित हुए। परम पुरुषार्थ (परतत्व) की प्राप्ति का उत्तम मार्ग पाकर, उसी मार्ग पर चलने की प्रेरणा मिली। रात भर

इसी चिंता में रहने के बाद सबेरा होते ही, अपने पुरोहित शेल्वनंबी (धनपूर्ण) को बुलाकर इस संबन्ध में परामर्श किया ।

शेल्वनंबी ने सलाह दी कि एक विद्वत् परिषद बुलायी जाए और उसमें परतत्व का निर्णय किया जाए । एक ज्ञानी और उत्तम गुरु को प्राप्त कर उनसे उपदेश प्राप्त करने की सलाह भी दी । इस तरह आपस में विचार विनिमय के बाद, परतत्व का निर्णय करने और उसकी प्राप्ति के लिए उचित मार्ग दर्शन प्राप्त करने, विद्वान और ज्ञानी मनीषियों की एक विद्वत-परिषद बुलाने का निश्चय किया ।

उक्त निर्णय के अनुसार, राजा ने सभा मंडप में एक स्तंभ गाड़ने एवं बहुत से धन भरी एक ग्रन्थि (विद्या शुल्क) बांधकर, उसमें लटकाने का प्रबन्ध किया । राजा ने इसकी घोषणा भी करायी कि जो परतत्व निर्णय में समर्थ निकलेंगे, वे शुल्क-द्रव्य-ग्रन्थि प्राप्त करेंगे ।

यह घोषणा सुनकर वेद-वेदांग के कई ज्ञानी पुरुष वहाँ पहुँच गए । विभिन्न धर्म के लोग, कई कलाकार, आदि मदुरै में एकत्रित हो गए । स्वयं राजा, मंत्री-

गण और दूसरे अधिकारी लोग मेहमानों के आदर-सत्कार में लगे हुए थे ।

निश्चित दिन सब सभा मंडप में उपस्थित हो गए । राजा, मंत्रीगण, शेल्वनंबी और सब ज्ञानी मेहमान अपने-अपने आसम पर आसीन हुए थे । सबने परतत्व के निर्णय और परम पुरुषार्थ पर अपना पक्ष प्रस्तुत किया । परन्तु परतत्व का निर्णय नहीं हो सका । राजा बहुत व्याकुल हुए । शेल्वनंबी की यही चिंता थी कि सब आए, लेकिन विष्णुचित्त क्यों अब तक नहीं आए । उनका विश्वास था कि वे अवश्य आएँगे । यह तो रही मदुरै में राज सभा की बात । लेकिन भगवान का संकल्प दूसरा था ।

अब देखिए कि श्रीविल्लिपुत्तूर में क्या हो रहा है । भगवान का संकल्प था कि उक्त काम (परतत्व का निर्णय) विष्णुचित्त के द्वारा संपन्न हो ।

रात को नींद में श्री विष्णुचित्त ने अनुभव किया कि स्वयं भगवान उनको जगाकर यह आदेश दे रहा है—

"विष्णुचित्त ! जागिए ! उठिए ! मदुरै की विद्वत सभा में जाकर परतत्व का निर्णय कीजिए । शुल्क-द्रव्य-ग्रन्थि प्राप्त कीजिए ।"

श्री विष्णुचित्त ने अपनी शंका प्रकट करते हुए कहा कि मैं कोई ज्ञानी तो नहीं—परतत्व का निर्णय करने—मैं तो नन्दवन में काम करनेवाला मामूली व्यक्ति हूँ। नन्दवन संबन्धी बातें और साधनों से ही मेरा परिचय है।

तब यह कहते हुए भगवान अंतर्धान हो गए—कि आप मदुरै की परिषद में अवश्य जाइए। परतत्व का निर्णय मेरे अनुग्रह से आपके द्वारा हो जाएगा।

श्री विष्णुचित्त को बडा अचंभा हुआ कि यह कैसा स्वप्न है।

उषाकाल का समय हो गया था। श्री विष्णुचित्त उठे। स्नानादि से निवृत्त होकर अपना नित्य-अनुष्ठान पूरा किया। नंदवन से नित्यवत तरह-तरह के फूल चुनकर सुन्दर मालाएँ गूंथकर वट-पत्रशायी के मंदिर गए। भगवान को मालाएँ समर्पित कर अंजलिबद्ध होकर ध्यान में लीन हो गए।

भगवान ने पूजकों की वाणी द्वारा भी श्री विष्णु-चित्त को अपनी आज्ञा पुनः सुनवायी कि वे परतत्व का निर्णय करने मदुरै की राज सभा में भाग लें। पूजकों ने श्री विष्णुचित्त को माला पहनाकर विशेष आदर सत्कार के साथ बिदा किया।

इस तरह भगवान की आज्ञा पाकर भक्तों के समूह सहित मदुरै को रवाना हुए। भक्त लोग छत्र, चामर ले कर उनके साथ चले।

श्री विष्णुचित्त मदुरै पहुँचे। यह समाचार पाते ही, पांडिय राजा, शेल्वनंबी आदि ने उनके दिव्य तेज़ और कांति से प्रभावित होकर, बडे सम्मान सहित उनका स्वागत किया और सभा मंडप में सम्मान पूर्ण स्थान दिया। विद्वानों का शास्त्रार्थ चालू था। वे अपना-अपना पक्ष प्रस्तुत कर रहे थे।

जब श्री विष्णुचित्त की बारी आयी तब वे शांति पूर्वक उठे। अंजलिबद्ध होकर भगवान का ध्यान किया। उन्होंने वहाँ इकट्टे सभी विद्वानों की शंकाओं का धैर्य से समाधान करना आरंभ किया और उनकी ईर्ष्या को धैर्य से, द्वेष भावना को प्रेम से, बुरी भावनाओं को सद्भावनाओं से, अज्ञान को ज्ञान से, गर्व को नम्रता से, कठोर हृदयों को करुणा से जीता।

आखिर उन्होंने यह सिद्धांत प्रतिपादित किया कि श्रीमन् नारायण ही परतत्व हैं। उसकी चरण सेवा ही परम पुरुषार्थ है। भगवान का पादारविंद ही मुक्ति

का एक मात्र साधन है। हम मोक्ष दशा में उसीका अनुभव करते हैं।

भगवान का नामोच्चारण और उनकी भक्तिपूर्ण प्रार्थना हमें आत्मोज्जीवन के मार्ग में ले जाएगी। श्री विष्णु के रूप में, कई अवतारों के रूप में, प्रधानतः श्रीकृष्ण के रूप में उसी परतत्व का ध्यान करते हैं। परतत्व की प्राप्ति ही सबसे बड़ा पुरुषार्थ है।

राजा और दूसरे लोग निस्तब्ध होकर श्री विष्णुचित्त की युक्तियुक्त, निष्पक्षपात वाणी सुन रहे थे। उनकी वाणी अमृत-धारा जैसी थी। सब पंडित लोग श्री विष्णुचित्त की प्रशंसा करते हुए उनकी जय-जयकार कर रहे थे।

आखिर वे कहने लगे कि समस्त वेद और वेदांत परम भागवतों के ज्ञान-भक्ति एवं प्रेम-भक्ति में लीन हो जाते हैं। ऐसी भक्ति ही इहलोक और परलोक दोनों के लिए ग्राह्य हैं।

जब वे अंतिम वाक्य बोल रहे थे, तब वहाँ उपस्थित सब लोगों ने यह अद्भुत दृश्य देखा—भगवान के संकल्प के अनुसार शुल्क-द्रव्य ग्रन्थि वाला स्तम्भ स्वयं अपने आप श्री विष्णुचित्त की ओर झुक रहा है और थैली

श्री विष्णुचित्त के अति निकट है। पांडिय राजा तुरन्त उठे और ग्रंथि को चीरकर उनको समर्पित किया। दंडवत् नमस्कार किया।

पांडिय राजा की अभिलाषा की पूर्ति हुई। राजा बडे प्रेम और भक्ति से उनको राज हाथी पर बिठाकर मंगल वाद्य सहित मदुरै के राज मार्ग में भव्य जुलूस निकाला। शंख और दुंदुभी बजने लगी। विरुदावलियां गायी जाती थीं। जय धोष होनें लगे। पामर और पंडित सब एक स्वर में श्री विष्णुचित्त की प्रशंसा करते हुए जुलूस में जा रहे थे। मदुरै शहर तोरण आदि से भव्य रूप से अलंकृत था। मदुरै वासियों के लिए यह बड़े त्योहार का दिन हो गया था। घर-घर में आरती उतारी गयी और उनका सम्मान किया गया। सब देवतागण अन्तरिक्ष में से पुष्पवृष्टि करते थे। ये सारी घटनाएँ मदुरै (कूडल क्षेत्र) में हुई। मदुरै के सब निवासी अपने सौभाग्य पर मुग्ध थे कि उनको यह शुभ अवसर प्राप्त हुआ है।

एकाएक श्री विष्णुचित्त के सामने कोटि-सूर्य-प्रकाश जैसी महाज्योति दिखायी पड़ी। सबकी आँखें चौंधिया गयीं। लेकिन श्री विष्णुचित्त की दृष्टि में वह पहले ज्योति-पर्वत सा लगा। देखते-देखते स्वर्ण पर्वत पर

स्थित एक बहुत बड़े ब्रह्मांड के समान, नील मेघ पुंज सा लगा। उसकी परम सुन्दरता वर्णनातीत थी।—ब्रह्मा, इन्द्र आदि देवताओं के बीच शंख, चक्र आदि दिव्य आभरणों से भूषित, लक्ष्मी सहित गरुडारूढ होकर आकाश में आविर्भूत भगवान महाविष्णु का (श्रीमन् नारायण) दर्शन पाकर श्री विष्णुचित्त पुलकांकित हो उठे।

उनके मन में शायद यह शंका उठी कि इतने महान सौन्दर्य पर संसारियों की कुदृष्टि न पड जाए। अति स्नेह की दशा में यही स्थिति होती है। श्री विष्णुचित्त को इसका ख्याल ही नहीं रहा कि भगवान सर्वशक्तिमान है।

भक्ति पर-वशता की स्थिति में, अपनी स्थिति को भूलकर, हाथी पर लटकती हुई धंटियों से झांझ का काम लेते हुए, अनायास ही संसार के रक्षक के रक्षा-मंगल के लिए भगवान को संबोधित करते हुए "पल्लांडु पल्लांडु" (बहु वर्ष, बहु वर्ष जय विजयी रहो) गाने लगे और गाते चले। यह प्रबन्ध "तिरुप्पल्लांडु" के नाम से प्रसिद्ध है। यह इतना पवित्र है कि भगवान की आराधना (नित्य पूजा) के आरंभ और अन्त में इसका पाठ किया जाता है।

पल्लाण्डु पल्लाण्डु, पल्लायिरत्ताण्डु,
पल्कोडि नूरायिरम्
मल्लाण्ड तिण्डोल्, मणिवण्णा ! उन्
शेव्वडि शेव्वि तिरुक्काप्पु

(तमिल पाठ)

(बहु वर्ष, बहु वर्ष, बहु सहस्र वर्ष, बहु सहस्र कोटि वर्ष जय विजयी रहो। मल्लवध समर्थ प्रबल भुजवाले मणि वर्ण ! तुम्हारे सुचिर चरणों का सौन्दर्य सुरक्षित एवं जय विजयी रहे।)

आगे, भगवान के साथ सतत रहकर नित्य कैंकर्य करनेवाले दास कुल, भगवान के दक्षिण वक्ष-स्थल में नित्यवास करनेवाली लक्ष्मी, दक्षिण हस्त में स्थित सुदर्शन चक्र, वामहस्त में स्थित पांचजन्य आदि का भी "पल्लाण्डु"—"बहु वर्ष जय विजयी रहो"—रक्षा मंगल गाते हैं।

पेरियाऴ्यवार तिरुमोऴि का आरंभ यहाँ से होता है जिससे इहलोक और परलोक दोनों का मार्गदर्शन मिलता है।

महावीर पांडिय राजा की अभिलाषा के अनुसार परतत्व का निर्णय हो गया। राजा को ज्ञान गुरु

मिल गए। उस वक्त से पांडिय नृपति महावीर ही नहीं, ज्ञानवीर भी बने। इनको इहलोक में ही परलोक के अनुभव का आनन्द मिला।

पेरियाऴ्वार इस तरह सम्मानित होकर श्रीविल्लिपुत्तूर वापस पहुँचे। सीधे वट-पत्रशायी के मंदिर जाकर प्राप्त सारा सम्मान और शुल्क-द्रव्य ग्रन्थि भगवान के चरणों में समर्पित कर दी। वे पूर्ववत माला समर्पण कैंकर्य में लग गए।—हाँ, और भी लगन और तन्मयता के साथ। भगवान के गुण गान करते हुए अपना जीवन धन्य मानते थे। इस तरह श्रीविल्लिपुत्तूर की यह संपत्ति भारत के भक्तों की आम संपत्ति हो गई। इसने भक्ति मार्ग को नया सौन्दर्य दिया।

"पेरियाऴ्वार तिरुमोळि़" प्रबन्ध का आरंभ तिरुप्पल्लांडु (रक्षा मंगल) से होता है। इसकी कुल सूक्तियाँ 473 हैं जो पाँच शतकों में विभक्त हैं।

इनकी सूक्तियों में श्री कृष्ण के बाल लीलाओं का सुन्दर एवं हृदय-स्पर्शी चित्र मिलता है। आऴ्वार स्वयं यशोदा माता बन जाते हैं। आऴ्वार, मातृ हृदय और प्रेम का ऐसा परिचय देते हैं-जैसे स्वयं यशोदा माता श्री कृष्ण के जन्म से लेकर सभी बाल लीलाओं का, आँखों

देखा वर्णन करती हैं। कृष्ण जन्म के वक्त गोप-गोपियों का आनन्दोत्सव, पालने में सुलाना, मुखारविन्द से पादारविन्द तक का वर्णन, बालक का घुटनों चलना, पावों चलना, स्नान कराना, विभिन्न पुष्पों से अलंकार, रक्षा बंधन, माटी भक्षण, वर्ष गाँठ, अन्न प्राशन, कन छेदन, चन्द्र को बुलाना (दर्शन), ताली पीटकर नर्तन, माखन चोरी, गो चारण, मुरली वादन आदि के वर्णन युक्त सूक्तियों (पाशुरम) को पाठ करनेवाले धन्य हैं। आगे पूतना वध, उलूखल बंधन, काली दमन लीला, गोवर्धन-धारण आदि का भी सुन्दर वर्णन मिलता है।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि तमिऴ साहित्य में पिल्लै-तमिऴ (बाल क्रीडाओं का वर्णन सरल भाषा में) नामक एक परंपरागत शैली है। तमिऴ साहित्य में शायद पहले पहल पेरियाऴ्वार के प्रबन्ध में इसका सुन्दर प्रयोग मिलता है।

इससे हम समझ सकते हैं कि श्रीकृष्ण के निम्न-लिखित रूप आऴ्वार को बहुत प्रिय है।

1. गोकुल का बाल कृष्ण
2. गाय और गोपियों के प्रिय साथी
3. वेणु गोपाल

श्री कृष्ण चरित्र का सौलभ्य और मन को वशीकरण करनेवाली सुन्दरता पेरियाऴवार की भक्ति के विकास का मूल केन्द्र है ।

यही नहीं, श्री वेंकटाचल, श्रीरंगम और तिरु-मालिरुञ्शोलै (वनाचल) में भी आप अपना इष्ट दैव श्री कृष्ण को ही विराजमान पाते हैं । उनके लिए सब अभिन्न हैं । वे उन क्षेत्रों का मंगलाशासन करते हैं और अपना रक्षा भार भगवान पर सौंप देते हैं । इन्होंने 19 दिव्य क्षेत्रों का मंगलाशासन किया है ।

भगवान का नाम इनको इतना प्रिय है कि वे सभी माताओं से अपेक्षा करते हैं कि सभी माताएँ अपने पुत्रों को श्री नारायण का नाम रखें। इस तरह सभी माता-पिता समूह को स्वर्ग का सरल रास्ता दिखाते हुए आगे इसका उपदेश देते हैं कि नारायण के माता-पिता कभी नरक नहीं जाते ।

आऴवार अपने हृदय भर भगवान के अस्तित्व का अनुभव करते हुए अपना आनन्दानुभव प्रकट करते हैं ।

" तुमने मुझे अपना लिया । " आगे अपनी आत्मा के रक्षक भगवान को संबोधित कर कहते हैं, जो उनके संपूर्ण व्यक्तित्व पर प्रकाश डालता है—

" उन्नै-क् कोण्डु एन्नुळ वैत्तेन्
एन्नैयुम् उन्निल्-इट्टेन् " (तमिऴ पाठ)

मेरे नाथ ! तुमको लेकर अपने हृदय में रखा,
अपने को भी तुम्हारे हृदय में रख दिया !
(तुम्हें समर्पित कर दिया)

दोनों प्रकार से श्री विष्णुचित्त का नाम सार्थक है। इसमें संपूर्ण शरणागति की भावना है।

आऴवार के अनुग्रह से हम भी यही भावना प्राप्त करें और अपना सब कुछ और अपना रक्षा भार भगवान् पर सौंप दें।

इन्हींकी फुलवारी में, तुलसी पौधों के बीच गोदा (आंडाल) का आविर्भाव हुआ था, जिनका बारह आऴवारों में मुख्य स्थान प्राप्त है।

आगे के अध्याय में आंडाल का दर्शन करेंगें।

पेरियाऴवार के श्रीपादों की जय हो।

आण्डाल

(श्री गोदा)
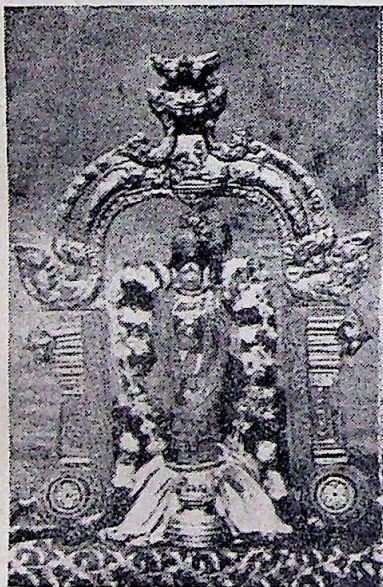
श्रीविष्णुचित्त कुलनन्दन कल्पवल्लीं,
श्रीरंगराज हरिचन्दन योगदृश्याम् ।
साक्षात् क्षमां करुणया कमलाम् इवान्याम्
गोदाम् अनन्यशरणः शरणं प्रपद्ये ।।

(श्री वेदांत देशिक कृत-गोदास्तुति)

गोदा (आण्डाल) श्री विष्णुचित्त के कुलनन्दन नन्दवन में आविर्भूत कोमल कल्पलता सम सुन्दर कन्या है। श्रीरंगनाथ रूपी हरिचन्दन वृक्ष के योग से अति लावण्यवती और मनोहर दिखाई देती है। यह मूर्तिमती भूमि देवी है और कारुण्यमयी लक्ष्मी है। निराश्रित मैं, उस गोदा की शरण लेता हूँ।

दक्षिण भारत कई भगवद्भक्तों का अवतार-स्थल रहा है, जिनमें 12 भक्त, आऴ्वरों के नाम से (भक्त सूरि) विख्यात हैं। ये सब विलक्षण ज्ञानी और भक्त थे। इन आऴ्वारों में पेरियाऴ्वार (श्री विष्णुचित्त) का अपना एक महत्वपूर्ण स्थान है तथा इनकी पुत्री आंडाल का भी।

श्री विष्णुचित्त श्रीविल्लिपुत्तूर के निवासी थे। यह तमिलनाडु राज्य में एक पावन नगरी है (वर्तमान कामराजर ज़िला)। उस वक्त यह पांडिय राज्य के अन्तर्गत था। भगवान का नित्य-कैंकर्य श्री विष्णुचित्त के जीवन का पवित्र लक्ष्य था। वे प्रतिदिन (स्वयं निर्मित) अपनी फुलवारी से, तुलसी, मालती, चमेली, चम्पक, मल्लिका, पाटली, मरुआ, इरुवाक्षि और नीलोत्पल आदि विभिन्न सुगन्धपूर्ण पुष्प चुनकर, सुन्दर पुष्प मालाएँ गूंथते

न—5

थे और क्षेत्र के भगवान वटपत्रशायी को उन पुष्प-मालाओं को समर्पित करते थे।

एक दिन की बात है। सूर्योदय का समय था। प्रतिदिन की तरह आळ्वार फूल चुनने नन्दवन गए। चारों तरफ़ का वातावरण निस्तब्ध, सुन्दर और मनमोहक था। तब आळ्वार ने तुलसी पौधों के बीच, एक अद्भुत दृश्य देखा। उस स्थान में चारों तरफ़ पवित्र प्रकाश फैल रहा था। निकट पहुँचने पर वहाँ एक लावण्यमयी शिशु को देखा। उसकी अतुल सुन्दरता, दिव्य तेज़, और कांति से आनन्द विभोर हो गए।

वे संतानहीन तो थे ही। अपने ऊपर भगवान की परम कृपा समझकर शिशु को अपने यहाँ ले आए। उसका नाम गोदा (तमिल में कोदै) रखा। इस तरह श्री विष्णुचित्त के नन्दवन में तुलसी पौधों के बीच, आषाढ मास के पूर्व फाल्गुनी नक्षत्र के दिन, गोदा प्रकट हुई। यह माना जाता है कि वह साक्षात भूमिदेवी और लक्ष्मी का अंश है।

वे बड़े प्रेम से गोदा का पालन पोषण करने लगे। गोदा तो दैवप्रकृति की थी, साथ ही एक परम भक्त श्री विष्णुचित्त उसका संरक्षक बने। श्री वेदांत देशिक के

शब्दों में वह "श्री विष्णुचित्त कुलनन्दन कल्पवल्ली" है। बचपन से ही अनुकूल और पवित्र वातावरण में पलकर, भक्ति से प्रेरित इसका जीवन, मधुर एवं भगवान के प्रेम में लीन रहा।

गोदा भी अपने पिताजी के साथ प्रति दिन फुलवारी जाती, फूल चुनने में अपने पिताजी की सहायता करती थी, स्वयं भी माला गूंथती थी। मालाएँ गूंथते श्री विष्णुचित्त भगवान के कल्याण गुणों और विशेष रूप से श्री कृष्ण भगवान की लीलाओं की कथाएँ गोदा को सुनाते थे। दिन प्रतिदिन भगवान के प्रति गोदा की प्रीति एवं भक्ति तीव्र होती गयी। दूसरे किसी विचार के लिए उनके मन में कोई स्थान न था। इसका फल यह हुआ कि वह भगवान को ही अपना पति मानने लगी। उसे इसकी चिंता होने लगी कि अब तक भगवान रंगनाथ ने क्यों दर्शन नहीं दिए। भगवान के योग्य और प्रिय बनना ही उसका लक्ष्य था।

एक दिन संत श्री विष्णुचित्त कहीं बाहर गए थे। जाने के पहले उन्होंने कई मालाएँ गूंथकर, टोकरी में तैयार रखी थीं, जो सुन्दर एवं सुगन्धित थीं। गोदा ने टोकरी से मालाएँ निकालकर अपने गले और कुंतल

में सजा लिया। आइने में अपनी सुन्दरता निहारकर बहुत आह्लादित हुई। उसका विश्वास दृढ़ हो गया कि वह भगवान श्री रंगनाथ के अनुरूप और पूर्ण रूप से पात्र है। फिर गोदा ने पुष्पमालाओं को उतारकर पूर्ववत उनको टोकरी में रख दिया। कई दिनों तक यह क्रम प्रति दिन चलता रहा। लेकिन पिताजी इससे अनभिज्ञ थे।

श्री विष्णुचित्त यथावत् उन पुष्पमालाओं को ले जाकर मंदिर के भगवान को समर्पित करते थे। मालाओं की अनुपम सुन्दरता और सुगंध पाकर मंदिर में कैंकर्य करनेवाले अनुभव करते थे कि यह आळ्वार की पवित्र भक्ति के कारण है। सच्ची बात से सब अनभिज्ञ थे।

रोज की तरह जब एक दिन गोदा पुष्पमालाओं से सजकर, भगवान की प्रेम धारा में बहते हुए, उसके रसास्वादन में मग्न रही, तब श्री विष्णुचित्त अचानक वहाँ आ पहुँचे। इस अद्भुत दृश्य को देखकर सन्न रह गए। भगवान के लिए गूंथी मालाएँ गोदा के गले और कुंतल में है। यह तो पहला दिन नहीं होगा। न जाने कितने दिनों से यह कन्या इस

तरह करती आ रही है। इस तरह विचार करते हुए श्री विष्णुचित्त ने गोदा को मीठी वाणी से समझाया कि आगे ऐसा कार्य न करे। उचित उपदेश देकर आश्वासन दिया। लेकिन गोदा को अपना काम गलत न लगा। भगवान की प्रेमिका कभी गलत काम कर सकती है?

श्री विष्णुचित्त नन्दवन से दुबारा फूल चुनकर लाए और पुनः मालाएँ गूंथीं; मंदिर गए और भगवान को मालाएँ समर्पित कीं। इन नई मालाओं से सज्जित भगवान के दर्शन यथावत न रहे। उन्होंने मालाओं में रोज़ की तरह कांति एवं सुन्दरता की कमी का अनुभव किया।

श्री विष्णुचित्त बहुत चिंतित हुए। हाँ, वे तो गोदा का, भगवान के प्रति विकसित प्रेम, भक्ति और विश्वास की भावना से अच्छी तरह परिचित थे। फ़िर भी उनके मन में यह विचार उठा कि शायद अपनी पुत्री के कार्य के कारण भगवान अतृप्त तो नहीं?

रात होने पर भी आऴ्वार की चिंता में कोई कमी न हुई। लेटे लेटे, लंबी सांस लेते हुए, भगवान के स्मरण एवं चिंतन में लीन थे। न जाने कब आँखें लगीं। एकाएक उनकी आँखें चौंधिया गयी। कोटिसूर्य प्रकाश

है। अद्भुत तेज है। अनुपम सुन्दरता है। यह भगवान के दिव्य दर्शन के अलावा और क्या हो सकता है? भगवान के दर्शन पाकर और उनकी दिव्य वाणी सुनकर आनन्द विभोर हो गए। आऴवार नें भगवान की यह वाणी भी सुनी कि आज आपने सुगन्ध हीन मालाएँ समर्पित की। यह क्यों? आऴवार क्षमा मांगने लगे। लेकिन भगवान ने उनको क्षमा मांगने न दिया। बीच में ही कहा—"गोदा से धृत मालाएँ ही मुझे अत्यन्त प्रिय लगती हैं। उन्हीं मालाओं की प्रतीक्षा में हैं। वही मालाएँ दीजिए। अपनी धारण की हुईं पुष्प मालाएँ (पूमालै) और वाचिक मालाएँ (पामालै) देने के लिए ही इस संसार में गोदा का जन्म हुआ हैं।" भगवान अदृश्य हो गया।

इतने में आऴवार की आंखें खुल गयीं। उन्होंने आँखें खोलकर चारों तरफ देखा। उनके मन में आनन्द की लहरें उठने लगी। इस स्वप्न पर विचार करते-करते गोदा को भी जगाया और अपने स्वप्न से अवगत कराया। दूसरे दिन सबेरे उठकर मालाएँ गूंथकर गोदा के सामने रखकर कहा कि वह इन्हें पहले धारण कर वापस दे।

गोदा के मन में आनन्द की लहरें उठने लगीं, और आँखों से प्रेमाश्रु की धारा। पिताजी की इच्छा के

अनुसार गोदा ने मालाएँ पहनीं और उतार कर आळ्वार के हाथों में दे दीं। अब मालाओं की अति सुन्दरता देखकर गोदा के प्रति उनकी श्रद्धा और भी कई गुणा बढ़ गई और अपनी पुत्री से बड़े प्रेम से कहा—तुम मेरी "आंडाल" हो (अर्थात् उज्जीवन करनेवाली)।

इस तरह श्री विष्णुचित्त, सिर्फ़ उस दिन ही नहीं, प्रतिदिन सुन्दर पुष्पमालाएं गूंथकर गोदा के गले एवं कुँतल में सजाते। इसके बाद उसी के हाथों से लेकर भगवान वटपत्रशायी को समर्पित करते थे। उन मालाओं में भगवान के पूर्ववत दर्शन पाकर स्वस्थ-चित्त हुए। इस तरह भगवान के संकल्प के अनुसार उनके कैंकर्य में लगे रहते थे। उस वक्त से गोदा का नाम "आमुक्तमाल्यादा" (तमिळ में "चूडिक्कोडुत्त-नाच्चियार") हुआ।

आंडाल की उम्र के साथ भगवद्भक्ति भी बढ़ती जा रही थी। पहले से ही अपने को भगवान को, श्रीरंगम के श्री रंगनाथ को मानती थी। अब वह भावना विकसित होकर प्रणय-भाव में बदल गयी। बचपन से ही भगवान के कल्याणगुण और विशेष रूप से श्री कृष्ण की लीलाओं की कथाएँ सुन चुकी थी। जिस प्रकार कृष्णावतार में गोपियों ने प्रेम के द्वारा भगवान को

पाया, उसी प्रकार वह भी अब भगवान को पानें की इच्छा करने लगी।

अब तो आंडाल के लिए श्रीविल्लिपुत्तूर ही व्रज भूमि हो गयी। मंदिर के भगवान वटपत्रशायी श्री कृष्ण हो गए। वह स्वयं अपनें को एक गोपी और अपनी सहेलियों को दूसरी गोपियों के रूप में मानने लगी। श्री कृष्ण के विरह में उनकी समकालीन गोपियां जो करती थी, गोदा भी उसी प्रकार करने लगी। गोपियों के समान वह भी व्रत (कात्यायनी व्रत) का आचरण करती थी। उद्देश्य यह था कि श्री रंगनाथ उसका पति बने। उनके बिना और किसी को वरन करने तैयार नहीं थी।

वह अनुभव करनें लगी कि श्री रंगनाथ इनके हृदय में पहुँच गए हैं। भावना के संसार में मिलन होता है। भगवान के प्रति आंडाल के प्रेम और भक्ति की गहराई उनके दो प्रबन्धों में तिरुप्पावै—(श्री व्रत-प्रबन्ध) और नाच्चियार तिरुमोळि (देवी श्रीसूक्ति) में प्रकट होती है।

पेरियाळ्वार के मन में कभी आश्चर्य, कभी आनन्द, कभी चिंता की भावनाएँ होनें लगीं। पुरुषोत्तम श्री रंगनाथ अपनी पुत्री के लिए उचित पति तो है ही।

फिर भी श्री विष्णुचित्त को समझ में यह बात नहीं आती थी कि अपनी कन्या का विवाह भगवान श्री रंगनाथ (अर्चामूर्ति) से कैसे हो पाएगा ?

गोदा की मानसिक आँखों के सामने पुरुषोत्तम पहुँच जाते हैं। उनको भूलना भी संभव नहीं है। इनकी आँखों में कई दिनों से निद्रा नहीं है। हाँ, एक रात को अंतिम पहर में उनकी आँखें लगीं। गहरी नींद में अनुभव करती है कि—

"उसके विवाह की सभी तैयारियाँ हो चुकी हैं। विवाह मंडप में नील ज्योति के उदय की तरह श्री रंगनाथ वर के वेष में स्वयं प्रकट हैं। स्वयं वधू बनकर नील वर्ण की रेशमी पट, पुष्पमाला, माथे पर कस्तूरि तिलक, कंगन, चूडियाँ और नूपुर पहनकर प्रेमी के बगल में बैठी है। श्री विष्णुचित्त कन्या-दान देते हैं। विवाह की सभी रीतियाँ सुमंगल संपन्न होती हैं। उन्नत गज-सम वर उसका पाणिग्रहण कर अग्नि की परिक्रमा करते हैं। लाज़ होम होता है—आदि आदि।"

आण्डाल आँखें खोलती हैं। बगल में उसकी सखी है। अपना आनन्द वर्धक अनुभव (स्वप्न) उसे सुनाती है।

गोदा का स्वप्न शीघ्र साकार हुआ। उसी दिन श्री विष्णुचित्त ने भी स्वप्न में देखा कि श्रीरंग के भगवान श्री रंगनाथ स्वयं गोदा से अपना विवाह संपन्न करा देने की इच्छा प्रकट करता है। गोदा को भी अपने स्वप्न से अवगत कराया।

इतना ही नहीं; श्रीरंगम में भगवान अपने परिजनों तथा मंदिर में कैंकर्य करनेवालों को स्वप्न में यह आज्ञा देता है कि वे सभी परिजन सहित श्रीविल्लि-पुत्तूर जाकर श्री विष्णुचित्त और उनकी पुत्री गोदा को आदर-सत्कार सहित श्रीरंगम लिवा लाएँ। श्रीरंगम मंदिर के लोग अविलंब श्रीविल्लिपुत्तूर पहुँचे।

इन सब बातों से श्री विष्णुचित्त पुलकांकित हुए। श्री वटपत्रशायी के दर्शन करके, उनसे बिदा लेकर, अपनी लाडली पुत्री को एक सज्जित और सुन्दर पालकी में बिठाकर श्रीरंगम को रवाना हुए।

श्रीरंगम में आनन्द की लहरें उठ रही थी। गली गली तोरण बांधे गए हैं। सब भक्त-गण मंदिर के सामने उपस्थित थे। आंडाल की पालकी मंदिर के सामने आ पहुँची। आंडाल पालकी से धीरे धीरे उतरी और मंदिर के गोपुर के सामने नमस्कार किया। मंद

गति से गर्भग्रह की ओर आगे बढ़ी। श्री रंगनाथ को अपनी कल्पना के अनुसार पीतांबरधारी होकर, स्वर्ण किरीट, शंख, चक्र और वनमाला से भूषित, बर वेष में विराजित पाया। सर्वालंकार भूषित, मालाओं से अलंकृत वधू गोदा क्षणमात्र भगवान के दर्शन करते खडी रही। भगवान का इशारा पाकर आगे बढी, शेष शय्या पर चढी। भगवान ने अपने हाथ बढाया और गोदा को अपने प्रेम पाश में ले लिया। गोदा की ज्योति चमक उठी और परमात्मा की ज्योति में विलीन हो गयी। श्री रंगनाथ की महिषी बन गई। पिता और पुत्री दोनों की मनोकामनाएँ पूरी हुईं।

श्री रंगनाथ की आज्ञा से श्री विष्णुचित्त का बड़े सम्मान के साथ सत्कार किया गया। अब श्री विष्णु-चित्त श्री रंगनाथ के अमर बंधु-श्वशुर हो गए। भगवान की आज्ञा पाकर पुनः श्रीविल्लिपुत्तूर पहुँचे और पूर्ववत अपने कैंकर्य में लग गये।

ऐसा भी एक कथन है कि स्वयं श्री रंगनाथ श्रीविल्लिपुत्तूर पहुँचे और परंपरागत सज-धज सहित, आडंबर पूर्ण ढंग से गोदा से उसका विवाह संपन्न हुआ। इसकी स्मृति के रूप में आप श्रीविल्लिपुत्तूर में अपनी प्रिय महिषी सहित अर्चारूप में विराजित हैं।

तिरुप्पावै और नाच्चियार तिरुमोऴि आण्डाल के अनुगृहीत दो प्रबन्ध हैं। कुल सूक्तियाँ (पाशुरम) 173 हैं। तिरुप्पावै की सूक्तियाँ (30) उपनिषद के समान पवित्र मानी जाती हैं। इसमें वैष्णव सिद्धांत का सार निहित है। इसके साथ-साथ एक उत्तम गीत-काव्य भी है। नाच्चियार तिरुमोऴि में कुल 143 सूक्तियाँ हैं, जो प्रेम-भावना से ओत प्रोत हैं।

आण्डाल का स्थान सिर्फ़ श्री रंगमन्नार की प्रिय महिषी के रूप में ही नहीं, लेकिन आऴ्वारों की गोष्ठी में भी इनका एक उत्कृष्ट स्थान हैं। समर्पण के साधन में भी गोदा में दो तरह की क्षमताएँ हैं।

1. पुष्प मालाओं का समर्पण (तमिल में "पूमालै")
2. वाचिक (सूक्ति) मालाओं का समर्पण (तमिल में "पामालै")।

"गोदा" नाम में ही ये दोनों अर्थ अंतर्निहित है। संस्कृत भाषा में "गोदा" शब्द से बोध होता है—

"वचन या सुन्दर एवं मधुर शब्द।"

तमिऴ भाषा में गोदा (कोदै) शब्द का अर्थ है—

"पुष्पमाला"

आण्डाल तो दो संस्कृतियों का संगम है, नाम में भी

इन दो संस्कृतियाँ का मिश्रण हैं—तमिल और संस्कृत। इस तरह उभय वेदांत तत्वों का उत्कृष्ट प्रतिपादन होता है।

हमारे देश में, विशेष रूप से दक्षिण में, मार्गशीर्ष महीने में (आण्डाल) तिरुप्पावै उत्सव बड़ी भक्ति एवं श्रद्धा के साथ मनाया जाता हैं। भक्त गण रोज़ बड़े सबेरे सूर्योदय के पहले, उषाकाल में तिरुप्पावै की सूक्तियों का पाठ करते हैं। भगवान की पूजा होती है। गोदा का अनुकरण करते हुए, गोदा की कृपा से, भगवान के प्रेम की प्राप्ति ही इसका प्रधान उद्देश्य है।

इसका सामाजिक पक्ष भी है। देश को और जनता को अज्ञान की नींद से जगाया जाता है। देश और समाज की उत्तम सेवा करने भगवान के अनुग्रह की प्रार्थना की जाती है। सारी जनता को आलस्य की नींद से जगाकर लोक सेवा में—भगवान और भक्तों की सेवा में लगाना ही इसका उद्देश्य है। देश की उन्नति एवं समाज का सब तरह से कल्याण और समृद्धि की कामना की जाती हैं।

इस तरह आण्डाल का प्रेम वैष्णव-भक्ति सिद्धांत के लिए एक विशेष प्रकाश देता है। वह हिन्दू धर्म के विकास का साधन बन जाता है। इसमें भारतीय

वेदांत-तत्व का सार निहित है; समस्त दुःखों को दूर कर शांति प्रदान करता है।

तिरुप्पावै की फलश्रृति में सबको यह आश्वासन मिलता है कि इस दिव्य प्रबन्ध का भक्तिपूर्वक पाठ करनेवाले सभी पुरुषार्थ प्राप्त करेंगे और भगवान की विशेष कृपा का पात्र बनकर सर्वत्र आनन्द पाएँगे।

गोदा के प्रबन्ध अति-मधुर तमिऴ भाषा में है। सब के लिए शिरोधार्य है। भक्तों के लिए यह गीत-माला, भक्ति का बड़ा साधन है। भक्त जन सिर, वाक् एवं हृदय से इस सूक्ति माला का धारण करते हैं और करते रहेंगे।

तिरुप्पावै की फलश्रृति में आंडाल का यह अनुग्रह उनकी वाणी में यों है—

शङ्ग-त्-तमिऴ-मालै मुप्पदुम् तप्पामे
इङ्गु इप्-परिशु उरैप्पार् ईर्-इरण्डु माल्-वरै-त् तोळ्
शेङ्कण् तिरु-मुहत्तु-च्, चेल्व-त् तिरु-मालाल्
ऐङ्गुम् तिरु-वरुल् पेर्रु इन्पु-उरुवर् एम्-पावाय्।

(तमिल पाठ)

शङ्ग-त् तमिल की इस गीत माला की तीसों सूक्तियों का इस भूमंडल पर अचूक पाठ करनेवाले भक्त लोग,

चतुर्भुज, कमलनयन, सौम्यमुख श्रीय: पति श्रीमन् नारायण (तिरुमाल) की विशेष कृपा का पात्र बनकर सर्वत्र आनंद पायेंगे। अर्थात्—

(करुणामूर्ति श्रीमन् नारायण की कृपा का पूर्ण पात्र बनकर, इस संसार में भगवान का नित्य-कैंकर्य करने के लिए अपेक्षित आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य एवं सत्संतान आदि समस्त पुरुषार्थ पाकर अंतत: परमपद पहुँचकर ब्रह्मानन्द प्राप्त करेंगे।)

आंडाल के श्रीपादों की जय हो।

प्रकाशनाधीन

चतुःसहस्र दिव्य प्रबन्ध माला

1. आऴ्वार-वैभव भाग—2

    1. पोय्है आळ्वार
    2. भूतत्ताळ्वार
    3. पेयाळ्वार

    (आदि आळ्वार)

    4. तिरुमळिशै आऴ्वार
    5. कुलशेखर आऴ्वार
    6. तोंडरडिप्पोडि आऴ्वार
    7. तिरुप्पाणाऴ्वार
    8. तिरुमंगै आऴ्वार

2. आऴ्वार अमृत-वाणी